बापू और नारी

लेखिका
श्रीमती माया गुप्त, बी० ए०

प्रकाशक
अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल
नयाटोला, पटना ४

मूल्य १॥)

बेगमा

पुस्तक-परिचय

राजनैतिक दृष्टि से हमारा राष्ट्र अब स्वाधीन है, परन्तु सामाजिक और [illegible]क दृष्टि से वह अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। स्त्री और पुरुष, पुरुष और [illegible]—दोनों को लेकर ही समाज ' समाज ' कहला सकेगा...

स्त्रियों के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी के क्या विचार थे? और, उन विचारों [illegible] बापू ने अपने अमली जीवन में किस प्रकार ढाला? आदर्शगत संघर्ष में [illegible]तीय महिलाओं को कहाँ तक आगे बढ़ना चाहिये? स्त्रियों के मुक्ति-आंदोलन [illegible] उचित दिशा क्या है? जन्म-निरोध या ब्रह्मचर्य? —आदि बीसियों सवाल [illegible]जिन्हें मद्देनजर रखते हुए विदुषी लेखिका ने यह पुस्तक लिखी है।

नवनिर्माण के लिए उद्यत भारतीय जनता के हाथों में यह छोटा-सा ग्रन्थ एक [illegible]चूक और कारगर औज़ार साबित होगा...एक महिला की ओर से श्रद्धा का [illegible]रम निदर्शन होता हुआ भी प्रस्तुत ग्रंथ निर्भीक समीक्षाओं से देदीप्यमान है।

स्त्रियों के प्रति तनिक भी अन्याय न हो, किसी भी दिशा में उनका स्वाधिकार [illegible]सुरक्षित रहे—इन मामलों में गाँधीजी कितने जागरूक थे! बहुत ही नज़दीक से [illegible]लेखिका ने बापू के व्यक्तित्व का अनुशीलन किया है, उनकी एक-एक बात को उसने [illegible]समीक्षक की आँखों से तौला है...

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ

बापू और नारी

बा और बापू :—व्यावहारिक बापू

स्त्री-जाति के प्रति महात्मा गांधी का रुख क्या था, इस सम्बन्ध सैद्धान्तिक आलोचना करने के पहले यह सबसे अच्छा होगा कि म इस विषय में जानकारी प्राप्त कर ले कि एक स्त्री जिसके साथ वे वाह-सूत्र में बँधे हुए थे तथा जो आमरण उनकी जन्म-संगिनी रहीं, सके साथ उन्होंने कैसा व्यवहार किया और कैसे निबाहा। यह हा जा सकता है कि ऐसा अवसर होता है कि एक व्यक्ति के मन में था उसके आचरण में अभेद हो और इस पुस्तक में आलोच्य विषय हात्माजी का मत है, न कि उनका आचरण। इस कथन को. त्य मानते हुए भी यह कह देना उचित है कि महात्माजी ऐसे व्यक्ति ही थे, जिनके मन तथा आचरण में अभेद रहा हो। तो क्या ह मेरा दावा है कि महात्माजी ने आजीवन इस सम्बन्ध में या अन्य म्बन्धों में जो कुछ भी किया, वह हमेशा आदर्श की कसौटी पर ही था ? नहीं, मेरा यह दावा नहीं है, पर मेरा यह कहना है कि अपने जीवन में जहाँ भी आदर्श से च्युत हो गये, वहाँ तथा उस न्दु पर या उस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही अपनी जितनी निन्दा । है, उससे अधिक निन्दा शत्रु से शत्रु भी नहीं कर सकता। इसी रण मैंने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में बापू और बा के सम्बन्ध का इतिहास ना उचित समझा है।

इससे हमें न केवल [illegible] के [illegible] को उनके [illegible] दृष्टि से [illegible] का मौका मिलेगा, बल्कि इससे हमें, इन दोनों विभूतियों के [illegible] जीवनों की झांकी भी स्पष्ट होगी। [illegible] के अनुसार [illegible] ठीक भी है कि पहले देव-दर्शन और फिर [illegible]।

महात्माजी का विवाह १३ वर्ष की उम्र में हो गया था। समय महात्माजी ने अपनी आत्मकथा लिखी, उस समय इस घटना का स्मरण कर अपने ऊपर तरस आता था। लिखा :—

"यह लिखते हुए मेरे हृदय को बड़ी व्यथा होती है कि की उम्र मे मेरा विवाह हुआ। आज जब मैं १२-१३ वर्ष को देखता हूँ और अपने विवाह का स्मरण हो आता है तब अपने पर तरस आने लगता है और उन बच्चों को इस बात बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी दुर्गति से अब तक बचे हैं। १३ साल की उम्र में हुए इस विवाह के समर्थन में एक भी दलील मेरे दिमाग में नहीं आती।"

कहीं पाठक यह न समझ बैठें कि महात्माजी जिस घटना उल्लेख कर रहे हैं, वह विवाह नहीं, बल्कि सगाई है याने बाद महात्माजी इस बात को साफ कर देते हैं कि इस प्रसंग में मतलब सगाई से नहीं है। वे इस बात को साफ करते हुए लिखते "सगाई टूट भी सकती है। सगाई हो जाने पर यदि लड़का जाय, तो उससे कन्या विधवा नहीं होती।"

महात्माजी की एक-एक करके ३ सगाइयाँ हुई थीं, पर स्वयं इस बात का पता नहीं था कि ये सगाइयाँ कब हुईं। लड़कियाँ मर गईं, तब उन्हें यह पता चला जब उनकी तीसरी सगा हुई। उनकी तीसरी सगाई कोई सात साल की उम्र में हुई होगी।

सुविधा के लिये तीन भाइयों का विवाह एक ही समय निश्चित हुआ। एक तो उनके मझले भाई, दूसरे उनके चचेरे भाई और तीसरा स्वयं उनका। "इसमें रे कल्याण का कोई विचार नहीं

। हमारी इच्छा की तो बात ही क्या ? बस, केवल माता-पिता की इच्छा और खर्च-वर्च की सुविधा देखी गई थी।" बार-बार झंझट करने के बजाय एक ही बार में तीन विवाहों को निबटाने की ठानी गई थी।

जब तैयारियाँ शुरू हो गईं, तब भाइयों ने जाना कि विवाह होनेवाला है। इन भाइयों को केवल यही उत्साह था कि अच्छे कपड़े मिलेंगे, खाना मिलेगा, बाजा बजेगा, जैसा कि इस प्रकार के विवाह में होता है। महात्माजी ने इस प्रसंग का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। ऊपर गिनाई हुई बातों के अतिरिक्त एक नई लड़की के साथ हँसी-खेल करने का विचार भी था। पहले इसके अलावा और कोई विचार तो नहीं था। "विषय-भोग करने का भाव तो पीछे से उत्पन्न हुआ। यह किस प्रकार हुआ, सो मैं बता तो सकता हूँ, परन्तु इसकी जिज्ञासा पाठक न रक्खें।"

अपने बाल-विवाह का महात्माजी ने अच्छा वर्णन किया है—"हमारा पाणिग्रहण हुआ। सप्तपदी में वर-वधू साथ बैठे। दोनों ने एक दूसरे को कसार (गेहूँ की लपसी-जैसा पदार्थ जिसे विवाह-विधि समाप्त होने पर वर-वधू खाते हैं) खिलाया, और तभी से हम दोनों एक साथ रहने लगे। ओह, वह पहली रात! दो अबोध बालक-बालिका बिना जाने, बिना समझे, संसार-सागर में कूद पड़े! भाभी ने सिखाया कि पहली रात को मुझे क्या-क्या करना चाहिये। यह याद नहीं पड़ता कि मैंने धर्मपत्नी से यह पूछा हो कि उन्हें किसने सिखाया था। अब भी पूछा जा सकता है; पर अब तो उसकी इच्छा तक नहीं होती। पाठक इतना ही जान लें कि हम दोनों एक दूसरे से डरते और शरमाते थे। मैं क्या जानता था कि बातें

[illegible]

जिन दिनों महात्माजी का विवाह हुआ, उन दिनों दाम्पत्य प्रेम, मितव्ययिता, बाल विवाह आदि विषय पर कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें हाथ लगीं। इनमें उन्होंने यह पढ़ा कि पति का धर्म है कि वह पत्निव्रत का पालन करे। पढ़ते ही यह बात उनके हृदय में अंकित हुई। सत्य ही बचपन से उनमें सत्य की लगन तो थी ही, इसलिये उनके लिये पत्नी को धोखा देने की बात नहीं उठती थी। इस बात को समझ चुके थे कि दूसरी स्त्री से सम्बन्ध जोड़ना पाप है। फिर होता कि वे स्वयं गिरते हैं, एक पत्नीव्रत के भंग होने की संभावना कम होती है।

यहाँ तक तो ठीक है। पर इन सद्विचारों का एक बुरा परिणाम निकला। उन्होंने सोचा—"यदि मैं एक पत्नि-व्रत का पालन करता हूँ, तो मेरी पत्नी को भी एक पतिव्रत का पालन करना चाहिये।" मगर कस्तूरबा तो ऐसा उसी प्रकार से करती ही थी, जैसे पानी नीचे की ओर बहता है, पर वहम की बात और है। वहम के लिये न तो किसी प्रमाण की जरूरत होती है, न तथ्य की। वह तो तथ्यों तथा प्रमाणों का सृजन तथा कल्पना कर लेता है।

महात्माजी के मुँह से ही इसका विवरण सुन लीजिये—"इन विचारों से मैं असहिष्णु, ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिये' में से 'पालन करवाना चाहिए' इस विचार तक जा पहुँचा। और यदि

जन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नी की चौकीदारी करनी चाहिये। नी की पवित्रता पर तो सन्देह करने का कोई कारण न था। परन्तु यों कहाँ कारण देखने जाती है ? मैंने कहा— "पत्नी हमेशा कहाँ-हाँ जाती है, यह जानना मेरे लिये जरूरी है।" 'मेरी इजाजत लिये ना वह कहीं नहीं जा सकती।' मेरा यह भाव मेरे और उनके चि दुःखद झगड़े का मूल बन बैठा। बिना इजाजत के कहीं न जा ना तो एक तरह की कैद हो गई। परन्तु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टी ी नहीं बनी थीं कि ऐसी कैद को बर्दाश्त करतीं। जहाँ जी चाहे मसे बिना पूछे जरूर चली जातीं। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें अधिक बाता त्यों-त्यों वह अधिक आजादी लेतीं और त्यों-त्यों मैं अधिक बगड़ता। इस कारण हम बाल-दम्पति में अबोला रहना एक मामूली ात हो गई। कस्तूरबाई जो आजादी लिया करतीं, उसे मैं बिलकुल नेर्दोष मानता हूँ। एक बालिका जिसके मन में कोई पाप नहीं है, व-दर्शन को जाने के लिये अथवा किसी से मिलने जाने के लिये क्यों स्या दबाव सहन करने लगी ? 'यदि मैं उसपर दबाव रक्खूँ तो केर वह मुझपर क्यों न रक्खे ?' पर यह बात तो अब समझ में आती है। उस समय तो मुझे पतिदेव की सत्ता सिद्ध करनी थी।"

पर इससे पाठक यह न समझें गांधी-दम्पति में मिठास का सम्बन्ध नहीं था। उनकी इस वक्रता के मूल में प्रेम था। गांधीजी अपनी स्त्री को आदर्श स्त्री बनाना चाहते थे। उनके मन में केवल यही भाव रहता था कि उनकी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, वे सीखें सो सीखे, वे पढ़ें सो पढ़े, और दोनों का मन एक होकर रहे। इस कारण प्रबल ईर्ष्या तथा शासन करने की इच्छा बनी रहने पर भी जीवन बिलकुल मिठास से वर्जित नहीं था।

गांधीजी लिखते हैं– "मुझे ख्याल नहीं पड़ता कि कस्तूरबाई के मन में भी ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थी। स्वभाव उनका सरल और स्वतंत्र था। वह परिश्रमी भी थीं, पर मेरे साथ कम बोला करतीं। अपने अज्ञान पर उन्हें सन्तोष न था। अपने बचपन में मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नहीं देखी कि 'वह पढ़ते हैं तो मैं भी पढ़ूं।' इससे मैं मानता हूँ कि मेरी भावना एकतरफा थी। मेरा विषय-सुख एक ही स्त्री पर अवलम्बित था, और मैं उस सुख की प्रतिध्वनि की आशा लगाये रहता था। अस्तु ! प्रेम यदि एकपक्षीय भी हो, तो वहाँ सर्वांश में दुःख नहीं हो सकता।"

उन दिनों गांधीजी स्कूल के छात्र थे। फिर उनके अपने कथन के अनुसार वे जहाँ तक हो सकता है, विषयासक्त थे। स्कूल में भी विषय-प्रसंग की याद आती, और यह विचार मन में चला ही करता कि कब रात हो और कब पत्नी-प्रसंग का मौका मिले। वियोग असह्य हो जाता था। वे कितने ही बातें कहकर, जिनको उन्होंने ऊटपटांग कहा है; देर तक कस्तूरबा को सोने न देते। पर इस प्रकार की विषयासक्ति के साथ-साथ उनमे कर्तव्यपरायणता थी।

उन्होने लिखा है, इसी कारण वे बचे रहे, नहीं तो किसी बुरी बीमारी मे फँसकर अकाल ही कालकवलित हो जाते अथवा अपने और दुनिया के लिये भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करते होते। "सुबह होते ही नित्यकर्म तो हर हालत मे करने चाहिये, झूठ तो बोल ही नहीं सकते, आदि अपने इन विचारों की बदौलत मैं अपने जीवन में कई संकटों से बच गया..."

गांधीजी के मन में इस [illegible] चाह थी कि कस्तूरबा की निरक्षरता दूर हो और [illegible]। पर यह इच्छा उस समय

क्यों पूर्ण नहीं हो सकी, इसका विवरण बहुत दिलचस्प है। वे इस प्रसंग में बड़ी स्पष्टवादिता से लिखते हैं– "पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढ़ाने देती ? एक तो मुझे उनकी मर्जी के खिलाफ पढ़ाना था; फिर रात में ही ऐसा मौका मिल सकता था। बुजुर्गों के सामने तो पत्नी की तरफ देख तक नहीं सकते—बात तो करना दूर रहा। उस समय काठियावाड़ में घूँघट निकालने का निरर्थक और जंगली रिवाज था। इस कारण पढ़ाने के अवसर मेरे प्रतिकूल था। इसलिये मुझे कहना होगा कि युवावस्था में पढ़ाने की जितनी भी कोशिशें मैंने कीं, वे सब प्रायः बेकार गईं। और, जब मैं विषय-निद्रा से जगा तब तो सार्वजनिक जीवन में पड़ चुका था" याने तब सार्वजनिक जीवन की व्यस्तताओं के कारण उनके निकट समय नहीं रहा।

फिर भी बाद को कस्तूरबा पढ़कर मामूली चिट्ठी-पत्री करना और गुजराती पढ़ना सीख गईं। गांधीजी यह समझते थे कि यदि उनका 'प्रेम विषय से दूषित न हुआ होता', तो कस्तूरबा विदुषी हो जातीं। उन्हें विश्वास था कि उस हालत में वे कस्तूरबा के पढ़ने के आलस्य पर विजय प्राप्त कर लेते; क्योंकि 'शुद्ध प्रेम के लिये दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं।'

यहाँ पर मैं थोड़ी देर के लिये ठहर जाऊँगी। गांधीजी ने इस प्रसंग में विषयासक्ति का सारा दोष अपने ऊपर लिया है, साथ ही कस्तूरबा को पढ़ने के सम्बन्ध में आलस्य का दोषी बनाया है, पर इस प्रकार जिम्मेदारी लेना तथा देना कहाँ तक उचित है, यह विचार्य है। इस प्रसंग में जो कुछ भी हुआ, उसके लिये एक बहुत बड़ी हद तक जिम्मेदारी समाज पर है। बालविवाह, फिर विवाह होते ही यौवन विषयवासना की ओर भाभी आदि गुरुजनों तक के द्वारा प्रेरणा,

स्त्री-शिक्षा पर रोकें, ये सब ऐसी बातें हैं जिनके लिये एक व्यक्ति को, सो चाहे स्वयं को ही दोषी करना हो उचित न होगा। बल्कि इस प्रकार अपने ऊपर दोष ले लेने से असली दोषी की तरफ से ध्यान बँट जाने की ही आशंका है।

पर गांधीजी उन दिनों कस्तूरबा के साथ बहुत दिनों तक रह नहीं पाये। प्रथा ही ऐसी थी कि लड़की कुछ दिनों तक पतिगृह में रहती, फिर पितृगृह में रहती। इस प्रथा को गांधीजी ने एक Defence mechanism या बचावमूलक तरीके के रूप में चित्रित किया है। वे लिखते हैं– "जहाँ हिन्दू-संसार में बाल-विवाह की घातक प्रथा है, वहाँ उसके साथ ही उसमें से कुछ मुक्ति दिलानेवाला एक रिवाज भी है। बालक वर-वधू को माँ-बाप बहुत समय तक एक साथ रहने नहीं देते। बाल-पत्नी का आधे से ज्यादा समय मायके में जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ; अर्थात् हम १३ और १८ साल की उम्र के दरमियान थोड़ा-थोड़ा करके तीन साल से अधिक साथ न रह सके होंगे। छः-आठ महीने रहना हुआ नहीं कि पत्नी के माँ-बाप का बुलावा आया नहीं। उस समय तो वे बुलावे बड़े नागवार मालूम होते थे; परन्तु सच पूछिये तो उन्हीं की बदौलत हम दोनों बहुत बच गये। फिर १८ साल की अवस्था में मैं विलायत गया—लंबे और सुन्दर वियोग का अवसर आया। विलायत से लौटने पर भी हम एक साथ तो छः महीने मुश्किल से रहे होंगे; क्योंकि मुझे राजकोट-बंबई बार-बार आना पड़ता था।"

गांधीजी विलायत गये, तो वहाँ वे कुछ प्रतिज्ञाएँ करके गये थे। एक मित्र मिले, जो उन्हें व्यभिचार की तरफ घसीटने लगे। एक बार वे मित्र इन्हें चकले में ले गये। वहाँ एक बाई के मकान में

ज़रूरी बातें बताकर भेजा। पैसे देना-दिवाना कुछ नहीं था। वह सब पहले ही हो चुका था। उनके लिये तो 'सिर्फ एकान्त लीला करनी बाकी थी।' गांधीजी मकान में दाखिल हुए; पर वे लिखते हैं "ईश्वर जिसे बचाना चाहता है, वह गिरने की इच्छा रखते हुए भी बच सकता है।" कहना न होगा कि गांधीजी का यह कथन बहुत अस्पष्ट है, और इसका कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं निकलता। क्योंकि जब तक यह साफ नहीं होता कि ईश्वर के इस प्रकार बचाने में कोई नियम है, तब तक इससे कोई नतीजा नहीं निकाला जा सकता।

पर हम तथ्यों पर चलें। आगे वे लिखते हैं–"उस कमरे में जाकर मैं तो मानो अन्धा हो गया। कुछ बोलने का ही औसान न रहा। मारे शरम के चुपचाप उस बाई की खटिया पर बैठ गया। एक शब्द तक मुँह में नहीं निकला। वह स्त्री झल्लाई और मुझे दो-चार बुरी-भली कहकर सीधा दरवाजे का रास्ता दिखलाया। उस समय तो मुझे लगा मानों मेरे पुरुषत्व पर लांछन लग गया, और धरती फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊँ। परन्तु बाद को, इससे मुझे उबार लेने पर मैंने ईश्वर का सदा उपकार माना है।"

मनोविज्ञान के छात्र या छात्रा के निकट गांधीजी का इस प्रकार उस स्त्री के निकट जाकर हक्का-बक्का तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना बहुत ही अर्थपूर्ण है। यह इस बात को प्रकट करता है कि उनके मन में नैतिक धारणाएँ बहुत दृढ़ रूप से जमी हुई थीं। उन्हीं ने उनको बचाया। उन्हीं के कारण उनके मुँह से शब्द नहीं निकला और वे जड़-भरतवत् बैठे रहे। यहाँ तक कि उस कुलटा के तिरस्कार पर भी उनका पुरुषत्व (या पशुत्व) जाग्रत नहीं हुआ।

उनके यह मित्र यदि मित्र तो शत्रु थे कौन था? पर जगत् में थे,

स्त्री-शिक्षा पर रोकें, ये सब ऐसी बातें हैं जिनके लिये एक व्यक्ति को सो चाहे स्वयं को ही दोषी करना ही उचित न होगा। बल्कि इस प्रकार अपने ऊपर दोष ले लेने से असली दोषी की तरफ से ध्यान बँट जाने की ही आशंका है।

पर गांधीजी उन दिनों कस्तूरबा के साथ बहुत दिन तक रह नहीं पाये। प्रथा ही ऐसी थी कि लड़की कुछ दिनों तक पतिगृह में रहती, फिर पितृगृह में रहती। इस प्रथा को गांधीजी ने एक Defence mechanism या बचावमूलक तरीके के रूप में चित्रित किया है। वे लिखते हैं– "जहाँ हिन्दू-संसार में बाल-विवाह की घातक प्रथा है, वहाँ उसके साथ ही उसमें से कुछ मुक्ति दिलानेवाला एक रिवाज भी है। बालक वर-वधू को माँ-बाप बहुत समय तक एक साथ रहने नहीं देते। बाल-पत्नी का आधे से ज्यादा समय मायके में जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ; अर्थात् हम १३ और १८ साल की उम्र के दरमियान थोड़ा-थोड़ा करके तीन साल से अधिक साथ न रह सके होंगे। छः-आठ महीने रहना हुआ नहीं कि पत्नी के माँ-बाप का बुलावा आया नहीं। उस समय तो वे बुलावे बड़े नागवार मालूम होते थे; परन्तु सच पूछिये तो उन्हीं की बदौलत हम दोनों बहुत बच गये। फिर १८ साल की अवस्था में मैं विलायत गया–लंबे और सुन्दर वियोग का अवसर आया। विलायत से लौटने पर भी हम एक साथ तो छः महीने मुश्किल से रहे होंगे; क्योंकि मुझे राजकोट-बंबई बार-बार आना पड़ता था।"

गांधीजी विलायत गये, तो वहाँ वे कुछ प्रतिज्ञाएँ करके गये थे। वहाँ एक मित्र मिले, जो उन्हें व्यभिचार की तरफ घसीटने लगे। " बार ये मित्र इन्हें चकले में ले गये। वहाँ एक बाई के

करने की नौबत आ गई। पर ये बिछौने पर सारी क्रियाएँ करने से बचते। अंत में अयमान की घोर रात्रि भी आ गई; पर उस समय यह मालूम थोड़े ही था। भय तो सदा ही रहता था। चाचा आये हुए थे। किसी को यह ख्याल तक न था कि यही रात्रि अन्तिम रात्रि साबित होगी।

"रात के साढ़े दस या ग्यारह बजे होंगे। मैं पैर दबा रहा था। चाचाजी ने मुझसे कहा—'अब तुम जाकर सोओ, मैं बैठूँगा।' मैं खुश हुआ और सीधा शयन-गृह में चला गया। पत्नी बेचारी भरी नींद में थी। पर मैं उसे क्यों सोने देने लगा? जगाया। पाँच-सात ही मिनट हुए होंगे कि नौकर ने दरवाजा खटखटाया। मैं चौंका!

"उसने कहा—'उठो, पिताजी की हालत बहुत खराब है।' बहुत खराब है का विशेष मतलब समझ गया। एकबारगी बिछौने से हटकर पूछा—'कहो तो बात क्या है?' 'पिताजी गुजर गये' उत्तर मिला।

"अब पश्चात्ताप किस काम का? मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ। बड़ा खेद हुआ। पिताजी के कमरे में दौड़ गया। मैं समझा कि यदि मैं विषयांध न होता, मैं अन्तिम घड़ियों तक पिताजी का पैर दबाता रहता। पिछले प्रकरण में मैंने जिस शर्म की ओर संकेत किया था, वह यही शर्म थी। सेवा के समय में भी विषयेच्छा इस काले धब्बे को मैं आज तक न पोंछ सका, न भूल सका। मैंने अपने को एक पत्निव्रत मानते हुए भी विषयांध माना है। इस सम्बन्ध मे यह भी कह देना है कि पत्नी ने जिस बालक को जन्म दिया, वह दो या चार दिन साँस लेकर चलता हुआ। दूसरा क्या परिणाम हो सकता था?"

मैं समझती हूँ कि इस स्थान पर गांधीजी ने अपने को जितना दोषी ठहराया है, उतना दोषी वे नहीं थे। क्या यह एक आकस्मिक बात नहीं थी कि जिस समय उनके पिताजी का देहावसान हो रहा था, उस समय वे अपनी स्त्री के साथ थे ? उनके पिता बहुत दिनों से रोग-शय्या पर थे। पिता-माता बीमार भी होते हैं, मर भी जाते हैं, फिर भी सारे सांसारिक काम होते ही रहते हैं। वे यह तो नहीं जानते थे कि उनके पिताजी आज ही मरनेवाले हैं, ऐसा कोई लक्षण तो नहीं था।

फिर महात्माजी ने यह जो लिखा है कि उनकी कामुकता के परिणामस्वरूप ही बच्चा मर गया, यह तो हद है। इस प्रकार कहने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं। सम्भव है, अत्यंत सच्चरित्र व्यक्ति का पुत्र मर जाय और एक कुलटा या असच्चरित्र का पुत्र जीवित रहे। मरने और जीने के और ही नियम हैं। कम से कम अभी तक उस तरह के किसी नियम का आविष्कार नहीं हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्माजी ने अपने ऊपर इस प्रसंग पर जो दोष लादे हैं, वे अनुचित हैं। बुद्धिमान पाठक उनके इस ब्योरे को पढ़कर उन्हें एक साधारण मनुष्य भले ही समझें, पर उन्हें पापी या दुष्कर्मी नहीं समझेगा जैसा कि उनके लिखने का अभिप्राय ज्ञात होता है। इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर अब मैं आगे बढ़ती हूँ।

इसके बाद गांधीजी बैरिस्टरी पढ़ने विलायत गये। वहाँ वे एक अंग्रेज सज्जन के यहाँ पैसा देकर अतिथि बने। पाश्चात्य देशों में इसका बहुत रिवाज है। विलायत में गांधीजी ने वहाँ के भारतीय छात्रों के रिवाज के अनुसार इस बात को छिपाया कि वे विवाहित हैं। वे लिखते हैं—"पाँच-छः वर्ष से विवाहित होते हुए भी और एक

हो जाती है। गर्भाधान के समय की माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का प्रभाव बच्चे पर अवश्य पड़ता है। माता की गर्भकालीन प्रकृति, माता के आहार-विहार के अच्छे-बुरे फल को विरासत में पाकर बच्चा जन्म पाता है। जन्म के बाद वह माता-पि का अनुकरण करने लगता है। वह शुरू में असहाय होता है इसलिये उसके विकास का भारी भार माता-पिता पर होता है। जो समझदार दम्पति इतना विचार करेंगे, वे कभी दम्पति-संग को विष वासना की पूर्ति का साधन न बनायेंगे। वे तो तभी संग करेंगे, ज उन्हें संतति की इच्छा होगी। रति-सुख का स्वतंत्र अस्तित्व है, य मानना तो मुझे घोर अज्ञान दिखाई देता है। जनन-क्रिया पर संसा के अस्तित्व का अवलम्बन है। संसार ईश्वर की लीला-भूमि है उसकी महिमा का प्रतिबिंब है। जो मनुष्य यह मानता है कि उसकी सुव्यवस्थित वृद्धि के लिये ही रतिक्रिया का निर्माण हुआ है, वह विषय-वासना को भगीरथ प्रयत्नों के द्वारा भी रोकेगा। और, रति भोग के फलस्वरूप जो संतति उत्पन्न होगी, उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रक्षा के लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके अपनी प्रजा को उससे लाभान्वित करेगा।"

महात्माजी के ये विचार कहाँ तक माननीय हैं, और कहाँ तक उनका पालन हो सकता है, इसपर मैं बाद को विचार करूँगी पर यहाँ बता दिया जाय कि इन्हीं दिनों उनके मन में घोर द्वंद्व क हुआ। स्वयं उसका वर्णन करते हैं—"अब मन में यह विचा लगा कि मुझे अपनी पत्नी के साथ कैसा सम्बन्ध रखना । पत्नी को विषयभोग का वाहन बनाना पत्नी के प्रति ।ये कैसे हो सकती है ? जब तक मैं विषयवासना के अधीन

समझ गया था कि शरीर-रक्षा के लिये दूध की आवश्यकता नहीं है, पर उसका सहसा छूट जाना कठिन था। एक ओर मैं यह बात अधिकाधिक समझता ही जा रहा था कि इंद्रिय-दमन के लिये दूध छोड़ देना चाहिये कि दूसरी ओर कलकत्ता से ऐसा साहित्य मेरे पास पहुँचा जिसमें ग्वाले लोगों के द्वारा गाय-भैसों पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन था। इस साहित्य का मुझपर बड़ा बुरा असर हुआ।" १९१२ में महात्माजी ने दूध पीना छोड़ दिया अंडा, गोश्त यह सब तो वे कभी खाते ही नहीं थे।

यद्यपि अपने जीवन में उन्होंने अनुभव से ब्रह्मचर्य के लिये दूध छोड़ दिया, पर वे लिखते हैं--"यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य के साथ भोजन और उपवास का निकट सम्बन्ध बताया है, फिर भी यह निश्चित है कि इसका मुख्य आधार है हमारा मन।"

यद्यपि १९०६ से ही बापू और बा का मैथुनिक सम्बन्ध समाप्त हो गया था, पर फिर भी उनका एक दूसरे के प्रेम में कोई फर्क नहीं आया। इसका कारण यह था कि कस्तूरबा महात्माजी को पति के अतिरिक्त अपना गुरु भी मानती थीं। जब उन्होंने देखा कि पति का रुख त्याग-तपस्या की तरफ है, तो उन्होंने अपने को भी ऐसा ही बना लिया।

फिनिक्स आश्रम की एक बड़ी दिलचस्प घटना सन् १९१३ साल की बात है। रावजी भाई मणि भाई पटेल लिखते हैं—"एक दिन सवेरे भोजन के बाद कोई ११ बजे मैं खाने की मेज के पास बैठा था। बापूजी हमेशा सबको जिमाकर जीमते थे। वे भोजन कर रहे थे और उनके पास उनके परिवार के एक बुजुर्ग कालिदास गांधी बैठे थे। वे टूंगाट नामक गाँव में रहते थे और वहाँ से कुछ दिन के लिए

"यह व्रत लेना मुझे बहुत कठिन मालूम हुआ। मेरी शक्ति
थी। मुझे चिंता रहती कि विकारों को क्योंकर दबा सकूंगा?
स्वपत्नी के साथ विकारों से अलिप्त रहना अजीब बात मालूम होती
थी। फिर भी मैं देख रहा था कि यही मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। मेरी
नीयत साफ थी। इसलिये यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति दे
सहायता देगा, मैं कूद पड़ा।

"आज बीस साल के बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए सानंदाश्चर्य
होता है। संयम-पालन का भाव तो मेरे मन में १९०१ से ही प्रबल
था और उसका पालन मैं कर भी रहा था। परन्तु, जो स्वतन्त्रता और
आनंद मैं अब पाने लगा, वह मुझे याद नहीं पड़ता कि १९०६ के
पहले मिला हो; क्योंकि उस समय मैं वासनाबद्ध था—कभी भी उसके
अधीन हो जाने का भय रहता था। किन्तु, अब वासना मुझपर
सवारी करने में असमर्थ हो गई।"

इस प्रकार जिस समय गांधीजी की उम्र ३७ साल की थी, तभी
उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। उस समय माता कस्तूरबा
की भी इतनी ही उम्र थी। औरों के लिये यह कहाँ तक अनुकरणीय
हो सकता है, इसमें सन्देह है। फिर इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण
रखना चाहिये कि उनके जीवन का प्रारंभ बहुत कम उम्र में हुआ था
महात्माजी पर ब्रह्मचर्य की धुन इतनी सवार हुई कि दूध छो
की भी बारी आ गई। वे लिखते हैं—"दूध से इंद्रिय-विकार
होते हैं, यह बात मैं पहले-पहल रायचंद भाई से समझा
अन्नाहार-सम्बन्धी अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने से इस विचार में वृद्धि
परन्तु जब तक ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लिया था, तब तक दूध
का इरादा खास तौर पर नहीं कर सका था। यह बात तो मैं व

समझ गया था कि शरीर-रक्षा के लिये दूध की आवश्यकता नहीं है, पर उसका सहसा छूट जाना कठिन था। एक ओर मैं यह बात अधिकाधिक समझता ही जा रहा था कि इंद्रिय-दमन के लिये दूध छोड़ देना चाहिये कि दूसरी ओर कलकत्ता से ऐसा साहित्य मेरे पास पहुँचा जिसमें ग्वाले लोगों के द्वारा गाय-भैंसों पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन था। इस साहित्य का मुझपर बड़ा बुरा असर हुआ ” १९१२ में महात्माजी ने दूध पीना छोड़ दिया, अंडा, गोश्त यह सब तो वे कभी खाते ही नहीं थे।

यद्यपि अपने जीवन में उन्होंने अनुभव से ब्रह्मचर्य के लिये दूध छोड़ दिया, पर वे लिखते हैं--"यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य के साथ भोजन और उपवास का निकट सम्बन्ध बताया है, फिर भी यह निश्चित है कि उसका मुख्य आधार है हमारा मन।"

यद्यपि १९०६ में ही बापू और बा का मैथुनिक सम्बन्ध समाप्त हो गया था, पर फिर भी उनका एक दूसरे के प्रेम में कोई फर्क नहीं आया। इसका कारण यह था कि कस्तूरबा महात्माजी को पति के अतिरिक्त अपना गुरु भी मानती थीं। जब उन्होंने देखा कि पति का रुख त्याग-तपस्या की तरफ है, तो उन्होंने अपने को भी ऐसा ही बना लिया।

फिनिक्स आश्रम की एक बड़ी दिलचस्प घटना सन् १९१३ साल की बात है। रावजी भाई मणि भाई पटेल लिखते हैं—"एक दिन सवेरे भोजन के बाद कोई ११ बजे मैं खाने की मेज के पास बैठा था। बापूजी हमेशा सबको जिमाकर जीमते थे। वे भोजन कर रहे थे और उनके पास उनके परिवार के एक बुजुर्ग कालिदास गांधी बैठे थे। वे टूंगाट नामक गाँव में रहते थे और वहाँ से कुछ दिन के लिए

आये थे। 'बा' खड़ी-खड़ी रसोईघर में सफाई का काम कर
थीं। श्री कालिदास भाई कुछ पुराने विचारों के थे।

दक्षिण अफ्रिका में एक मामूली व्यापारी के यहाँ भी रसोई
का और दूसरा सफाई वगैरह का काम करने के लिए नौकर रहते
यहाँ बा को अपने हाथों सब काम करते देखकर श्री कालिदास
ने बापूजी को सम्बोधन करके कहा—"भाई, तुमने तो जीवन
बहुत हेर-फेर कर डाला। बिलकुल सादगी-सादगी अपना ली।
कस्तूरबाई ने भी कोई वैभव नहीं भोगा।"

"मैंने इन्हें वैभव भोगने से रोका कब है?" बापूजी ने
खाते जवाब दिया।

"तो तुम्हारे घर में मैंने क्या वैभव भोगा है?" बा ने हँ
हँसते ताना मारा।

"बापूजी ने उसी लहजे में हँसते-हँसते कहा, "मैंने तुझे गहने
पहनने से या अच्छी रेशमी साड़ियाँ पहनने से कब रोका है, और
जब तूने चाहा तब तेरे लिए सोने की चूड़ियाँ भी बनवा लाया था न!"

"तुमने तो सभी कुछ लाकर दिया, लेकिन मैंने उसका उपयोग
कब किया है? देख लिया कि तुम्हारा रास्ता जुदा है। तुम्हें तो
साधु-संन्यासी बनना है। तो फिर मैं मौज-शौक मनाकर क्या करती
तुम्हारी तबीयत जान लेने के बाद मैंने तो अपने मन को म
लिया।" बा कुछ गम्भीर होकर बोलीं।

यों तो माता कस्तूरबा ने बराबर गांधीजी के साथ निभाने की
चेष्टा की, पर कई बार गांधीजी का आदर्श ऐसा होता था कि
व्यक्ति के लिये उसे निभाना मुश्किल तो था ही, यहाँ तक कि

अपने आपको उनका शिक्षक भी मानता था, इसलिये अपने अंधप्रेम के अधीन होकर उन्हें ठीक-ठीक सताता था।

"इस तरह उनके बरतन को उठाकर ले जाने भर से मुझे संतोष न हुआ। वह हँसते हुए उसे ले जायें, तभी मुझे सन्तोष हो। इसलिए मैंने दो बातें ऊँची आवाज में कहीं और मैं गरज उठा—मेरे घर में यह बखेड़ा नहीं चलेगा।

"यह वचन तीर की तरह चुभा। पत्नी खौल उठी—'तो अपना घर अपने पास रखो, मैं चली।'

"मैं ईश्वर को भूल बैठा था। दया लेश-मात्र मुझमें न रह गया था। मैंने हाथ पकड़ा। जीने के सामने ही बाहर निकलने का दरवाजा था। मैं उस दीन अबला को पकड़कर दरवाजे तक खींच ले गया। दरवाजा आधा खोला।

"आँखों से गंगा-जमुना बह रही थी और कस्तूरबाई बोलीं—'तुम्हें तो शरम नहीं मुझे है। जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर जाऊँ कहाँ? यहाँ माँ-बाप भी नहीं कि उनके पास चली जाऊँ। मैं औरत ठहरी, इसलिए मुझे तुम्हारी चपत भी खानी ही होगी। अब जरा शरम करो और दरवाजा बन्द कर दो। कोई देखेगा तो दोनों की फजीहत होगी।'

"मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा; लेकिन मन में शरमा जरूर गया। दरवाजा बन्द किया। अगर पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी, तो मैं भी छोड़कर कहाँ जा सकता था? हमारे बीच झगड़े तो बहुत हुए हैं, लेकिन परिणाम हमेशा शुभ ही हुआ है। पत्नी ने अपनी अद्भुत सहनशीलता से विजय पाई है।"

इस घटना से मुझे तो ऐसा मालूम देता है कि बापू ने शुरू से

स्त्रियों की आर्थिक-सामाजिक स्वाधीनता

राजकुमारी अमृतकौर ने गांधीजी लिखित Women and social injustice में बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा है—"प्राचीन भारत की संस्कृति तथा सामाजिक आदर्श बहुत ऊँचे होते हुए भी हमारे सामने यह दुःखद तथ्य मौजूद है कि हम उन आदर्शों से गिर चुके हैं और स्त्रियों के क्षेत्र मे तो हमारा पतन इतना अधिक हो चुका है जिसका कोई हिसाब ही नहीं है। पुरुष की साथिन, समकक्षा तथा सहायिका होने के स्थान से च्युत होकर वह उसकी इच्छा-पूर्ति का एक निष्क्रिय साधनमात्र हो गई है, मानो उसकी निजी अधिकार अथवा इच्छा नामक कोई वस्तु हो ही नहीं। रीति-रिवाज तथा सामाजिक तौर-तरीके बराबर उसके विरुद्ध रहे और इनके कारण स्त्री और भी घाटे मे रही। सच बात तो यह है कि स्त्रियों की यह पराधीनता केवल हमारे देश तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि कल तक उन्नत पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियों का बुरा हाल रहा। और, आयें दिन पाश्चात्य देशों में स्त्रियों की अवस्था में जो उन्नति हुई है, वह उन द्वारा निरंतर चलाये गये संग्रामों के कारण हुई है। पर अभी तक इन उन्नत देशों में भी स्त्रियाँ जो-जो बातें चाहती हैं, वे प्राप्त नहीं हुईं। अभी तक अनेक देशों में उनके अधिकार स्वीकृत नहीं हुए हैं।"

गांधीजी स्त्रियों के अधिकारों के इतने बड़े पक्षपाती थे कि और किसी मामले में उन्होंने शास्त्रों का खुल्लमखुल्ला कहीं खंडन नहीं हुआ, पर इस विषय में उन्होंने शास्त्रों का लिहाज न करते हुए साफ-साफ ... कह दी। एक पत्र-लेखक ने उनका ध्यान स्मृतियों के इन वचनों की ओर आकृष्ट किया—

पत्नी पति को सर्वदा भगवान समझकर बरते, भले ही वह दुश्चरित्र, कामी तथा सब गुणों से हीन हो।' [मनु ७ । १७४]

'पत्नी के लिये सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह पति के आदेश का पालन करे।' [याज्ञवल्क्य १ । ७८]

'न तो स्त्री के लिये कोई अलग यज्ञ है, व्रत है, न उपवास है। पतिसेवा से ही उसे स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त हो सकता है।' [मनु ५ । १४७]

'पति के मौजूद रहते जो अलग व्रत करती है, वह पति की आयु को क्षीण करती है। वह नरक में जाती है। जिस स्त्री को पवित्र जल या तीर्थ की आवश्यकता हो, वह पति का स्नान-जल या चरणोदक पीये तो उसे परम गति प्राप्त होती है।' [अत्रि १३६-३७]

'पति के अलावा स्त्री के लिये कोई उच्चतर लोक नहीं है। जो स्त्री पति को असन्तुष्ट रखती है, वह मृत्यु के बाद पतिलोक में नहीं जा सकती, इस कारण पत्नी को चाहिये कि वह पति को कभी भी अप्रसन्न न करे।' [वशिष्ठ २१ । १४]

'वह स्त्री जो पितृकुल की बड़ाइयाँ करती है, और पति की अवज्ञा करती है, राजा को चाहिये कि एक बड़ी भीड़ के सामने उसे कुत्ते से खिलावे (मनु ८ । ३७१)

'पति की आज्ञा को न माननेवाली स्त्री के हाथ का कोई न खावे। ऐसी स्त्री को विषयी समझना चाहिये।' (अंगिरस ६९)

'पति अनाचारी, मद्यप या कुरोगी होने के कारण जो स्त्री उसकी आज्ञा नहीं मानती, उसे तीन महीने तक गहने-कपड़े छीनकर अलग रखा जाय।' (मनु १० । ७८)………… इत्यादि।

महात्माजी ने इसपर लिखते हुए कहा कि स्मृतियों में इन उद्धरणों के विरुद्ध वचन भी हैं, पर प्रश्न तो यह है कि जिन स्मृतियों

हुआ कि स्त्रियों को कानून बनाना चाहिये और वे सब तरह से पुरुषों के बराबर हों। महात्माजी का भी यही कहना है :—

"मैं यह चाहूँगा कि लड़के तथा लड़कियों के साथ एक-सा व्यवहार किया जाय। ज्यों-ज्यों स्त्रियाँ अपनी ताकत का अनुभव करने लगती हैं, त्यों-त्यों वे अधिकाधिक शिक्षिता होती जाती हैं। वे स्वाभाविक रूप से उन भयंकर विषमताओं के विरुद्ध आवाज उठायेंगी जिनके अधीन वे रक्खी जाती हैं।" (W. S. I. P. 12)

महात्माजी के मतानुसार स्त्री और पुरुष बराबर तो हैं, पर बिलकुल एक नहीं। Man and woman are equal in status, but are not identical. "एक दूसरे के पूरक होकर ही पुरुष और स्त्री की बहुत सुन्दर जोड़ी बनती है। एक दूसरे का सहायक है, इस कारण एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिये यह एक स्वतःसिद्ध की तरह है कि कोई भी बात जिससे एक की हानि होगी, उससे दोनों का विनाश होने के लिये बाध्य है।"

दूसरे शब्दों में महात्माजी का यह अभिप्राय है कि स्त्रियों को नुकसान पहुँचाकर, उनकी मर्यादा घटाकर कोई बात न हो। अवश्य स्त्रियों के लिये क्या मर्यादा है और क्या मर्यादा नहीं, इस सम्बन्ध में गांधीजी के निजी विचार हैं। मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि गांधीजी पुरुष और स्त्री को बराबर मानते हुए भी उन्हें एक नहीं मानते।

कई मामलों में वे पुरुष तथा स्त्री एक दूसरे के पूरक हैं, यह भी सच है, पर सभी क्षेत्रों में वे विभिन्नधर्मी नहीं हैं। इस सम्बन्ध में सबसे दिलचस्प बात यह होगी कि यह जानें कि जिस आर्थिक निकृष्टता के कारण स्त्रियों की पराधीनता की उत्पत्ति हुई, उसे दूर करने

अमेरिका आदि देशों में मध्यवित्त तो खैर नौकर रख ही नहीं सकते, बहुत कम धनी भी नौकर रख सकते हैं। यहाँ तक कि वहाँ की स्त्रियों को धोबी का काम भी करना पड़ता है। बात यह है कि नौकर की तनख्वाह बहुत अधिक होती है।

घर की देख-रेख में जो मुख्य काम आते हैं, वह ये हैं—

(१) भोजन बनाना, परोसना, बर्तन माँजना इत्यादि।

(२) बच्चों की देख-रेख तथा पालन इत्यादि।

(३) सफाई, झाड़ू-बुहारू, कपड़े धोना इत्यादि।

इनमें जो काम गिनाये गये हैं, उन्हीं में एक स्त्री का सारा दिन लग जाता है। कई उच्च शिक्षित स्त्रियाँ (यदि वे कई नौकर न रखने काबिल हुईं) तो विवाह के बाद ऐसी परिस्थिति में पड़ जाती हैं कि उन्होंने जो कुछ पढ़ा था, उसे भी भूल जाती हैं, आगे चर्चा रखने की तो बात ही बहुत दूर रही। इन परिस्थितियों को देखकर कई लोग यह ठीक ही कहते हैं कि जब स्त्री को इस प्रकार झाड़ू-बुहारू तथा खाना पकाने में ही जीवन बिताना है, तो उसे उच्च शिक्षा देने की क्या जरूरत है? बात सच है।

इस प्रकार हम ऐसी जगह आकर फंस जाती हैं, जहाँ कोई समाधान नहीं ज्ञात होता। शिक्षा तथा उच्च शिक्षा आवश्यक है, पर उसका स्त्रियों के क्षेत्र में तब तक कोई फायदा नहीं जब तक वे रसोई-घर की गुलामी से मुक्त न कर दी जायँ। पर रसोईघर की गुलामी से मुक्ति तभी हो सकती है जब ऐसे सार्वजनिक भोजनालय खुल जायँ, जो मुनाफे के लिये चलाये न जायँ, बल्कि समाज के कल्याण के लिये, सहकारिता के आधार पर हों। पर गांधीजी जिस समाज की कल्पना करते हैं, उसमें इतने क्रान्तिकारी परिवर्तनों की बात नहीं है।

उसमें समाज का नमूना यही रहेगा, केवल नैतिक जागरण कर दिया जायगा। गांधीजी प्रत्येक क्षेत्र में कुछ तात्कालिक सुधार चाहते थे—अधिक गहराई तक जाकर सिद्धान्तों की छान-बीन उनके स्वभाव में नहीं था।

पर, फिर भी गांधीजी स्त्रियों की आर्थिक स्वाधीनता के पक्ष में थे। ८-६-४० के 'हरिजन' में गांधीजी ने यह लेख लिखा था —

"प्रश्न—कुछ लोग स्त्रियों की सम्पत्ति की अधिकारिणी होने के विपक्ष में इस कारण हैं कि उनके अनुसार इससे दुर्नीति बढ़ेगी। आपकी क्या राय है?

उत्तर—मैं इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरा प्रश्न पूछकर दूँगा। क्या पुरुष सम्पत्ति का अधिकारी तथा स्वतंत्र होने के कारण पुरुषों में दुर्नीति बढ़ी है? यदि इसका उत्तर हाँ है, तो मैं कहता हूँ कि स्त्रियों में भी ऐसा हो। बल्कि सच तो यह है कि जब स्त्रियाँ सम्पत्ति की अधिकारिणी हो जायेंगी तथा और अधिकारों में पुरुष के समान हो जायेंगी, तो यह देखा जायगा कि दुर्नीति या सुनीति के और ही कारण हैं। ऐसे सदाचार में कुछ सार नहीं है, जो पुरुष या नारी की असहायता पर निर्भर है। सदाचार की जड़ हमारे हृदयों की पवित्रता में है।"

इससे सफाई शब्द और क्या हो सकते हैं। यदि कहा जाय कि इन वचनों में तथा पहले उद्धृत वचनों में कुछ फरक है, तो इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह विरोध केवल भ्रम है। उनके विचार वस्तुतः बड़े क्रान्तिकारी थे। हाँ, सब को लेकर चलने की इच्छा के कारण वे कभी-कभी कुछ गोलमोल बातें कर जाते थे।

स्त्रियों को कैसी शिक्षा दी जाय

गांधीजी के जो विचार थे, उन्हीं के अनुरूप उनके स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी विचार भी थे। वे पर्दा के विरुद्ध थे। वास्तव में पर्दा केवल मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी की स्त्रियों की ही समस्या है। किसान, मजदूरों में यह समस्या है ही नहीं, इसके आर्थिक कारण हैं। यदि किसान, मजदूर स्त्रियाँ पर्दा रखें, तो वे काम कैसे करेंगी, वे खेत में कैसे जायेंगी, वे मिलों में मजदूरी कैसे करेंगी और यदि मजदूरी तथा किसानी न भी करें तो उनके रहने की व्यवस्था ऐसी है कि उसमें पर्दा सम्भव नहीं।

महात्माजी पर्दा प्रथा के बहुत बड़े विरोधी थे। उन्होंने २४-२-२७ को यंग इंडिया में पर्दा के सम्बन्ध में लिखा था—"मेरी यह राय है कि भारतवर्ष में पर्दा प्रथा का प्रचलन अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और हिन्दुओं के ह्रास के युग में इसका प्रचार हुआ। जिस युग में गौरवमयी द्रौपदी तथा निष्कलंका सीता थीं, उस युग में पर्दा तो हो ही नहीं सकता था। गार्गी पर्दे के पीछे से प्रवचन नहीं करती होगी। फिर अब भी सारे भारत में पर्दा नहीं है। दक्षिण, गुजरात तथा पंजाब में कोई पर्दा नहीं जानता। किसानों में कोई पर्दा नहीं है। फिर भी इन प्रान्तों में तथा किसानों में कोई पर्दा नहीं है, इसका कोई बुरा नतीजा तो नहीं सुना गया। या यह भी कहना उचित नहीं होगा कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में जहाँ पर्दा नहीं है, वहाँ की स्त्रियाँ कम सदाचारी होती हैं। पत्रलेखक सभी प्राचीन बातों का पक्ष-समर्थन करना चाहते हैं। मैं यह तो मानता हूँ कि प्राचीन लोगों ने हमें

सदाचार के ऐसे सूत्र दिये हैं, जो अद्वितीय हैं, पर यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि प्राचीनों ने जो कुछ भी किया, उनकी प्रत्येक बात ठीक थी। फिर यह कौन बतायगा कि क्या बात वाकई प्राचीन है। क्या १०८ उपनिषद् सब के सब बराबर मान्य हैं? मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि हम बुद्धि की कसौटी पर ऐसी सब बातों की जाँच करें जिनकी जाँच की जा सकती है। और यदि कोई बात वह चाहे जितना भी प्राचीन बाना पहनकर हमारे सामने आवे बुद्धि की कसौटी पर खरी न उतरे, तो हम उसे बिल्कुल छोड़ दें।"

इस प्रकार जहाँ भी शास्त्रों में स्त्री-विरोध रहा, उन्होंने उनके विरुद्ध बहुत खुली आवाज उठाई। एक चतुर राजनीतिज्ञ के नाते उसको गोलमोल बातें करनी आती थीं, वे इस मामले में भी ऐसा कर सकते थे, कम-से-कम वे ऐसा तो कर ही सकते थे कि वे शास्त्रों का कोई उल्लेख न करते और अपनी बात कह जाते। पर नहीं, वे यह महसूस करते थे कि इस मामले में सब से बड़ी बाधक धार्मिक रूढ़ियाँ हैं, इस कारण उन्होंने ताल ठोककर उनका सामना किया। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि आधुनिकता के सम्पर्क में आकर 'हमारे घरों में बिजली-बत्ती आदि तो प्रविष्ट हो गईं', पर रूढ़ियाँ जहाँ की तहाँ बनी रहीं। ऊपर से हम आधुनिक हो गये, पर यह प्रगति केवल बाह्य रही, आभ्यंतरिक रूप से हम वही शाश्वत तथा गतानुगतिक बने रहे। गांधीजी बहुत क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं चाहते थे, पर वे जितना चाहते थे, उसे जी-जान से चाहते थे और यह चाहते थे कि वह फौरन् हो जाय।

३-२-२७ के यंग इंडिया में उन्होंने यथेष्ट कोप के साथ लिखा "गत सौ वर्षों से हमें जो शिक्षा मिली है, मालूम तो ऐसा होता है

कि उसकी हम पर कोई विशेष छाप नहीं पड़ी, क्योंमें तो यही देखता. हूँ कि पढ़े-लिखे घरानों में भी पर्दे का रिवाज चालू है, ऐसा इसलिये नहीं कि पढ़े-लिखे लोगों को इस प्रथा में विश्वास है, बल्कि इसलिये कि उनमें इसके विरोध का दम नहीं है। XXX जब तक स्त्रियाँ अपने घरों तथा आंगनों के पिंजड़ों में बन्द हैं, तब तक इससे अधिक कुछ आशा नहीं की जा सकती। XX क्या बात है कि हमारी स्त्रियों को पुरुषों की तरह आजादी नहीं है ? उन्हें बाहर खुली हवा में जाकर घुमने से क्यों रोका जाता है ?"

बहुत से रूढ़िवादी पर्दे को सतीत्व के लिये जरूरी बताते हैं। इसी का उत्तर देते हुए गांधीजी ने उसी लेख में लिखा "सतीत्व कोई कैद की उपज नहीं है। किसी पर यह ऊपर से लादा नहीं जा सकता। पर्दे से घेरकर इसकी रक्षा नहीं की जा सकती। इसकी उत्पत्ति भीतर से होनी चाहिये और इसका कुछ मूल्य तो तभी है जब इसके मार्ग में ऐसे प्रलोभन आवें जिनकी आशंका नहीं थी। सतीत्व सीता की तरह चुनौती देकर कायम रहनेवाला होना चाहिये। ऐसा सतीत्व दो कौड़ी का है, जो परपुरुष की आँख पड़ते ही समाप्त हो जाय। पुरुषों को चाहिये, यदि वे पुरुष हैं, तो अपनी स्त्रियों पर विश्वास रक्खें जैसे कि स्त्रियाँ उनपर मजबूरी से विश्वास रखती हैं। हम अपने एक अंग को पक्षपात-ग्रस्त कर न चलें। XXX भारत में स्त्रियों की स्वच्छन्द वृद्धि तथा विकास को रोककर हम स्वाधीन तथा स्वतंत्र विचार के लोगों की उत्पत्ति को रोक रहे हैं।"

बहुत से भाइयों तथा बहिनों को ऐसा लग सकता है कि पर्दे के सम्बन्ध में गांधीजी के विचारों को व्यर्थ में ही उद्धृत कर रही हूँ। ...न नजदीक अब पर्दे की समस्या है ही नहीं, पर यह बात गलत है।

अवश्य इस क्षेत्र में परिस्थिति में बराबर तरक्की हो रही है, पर यह शर्म की बात है कि स्वतंत्र हो जाने के बाद भी पर्दे की समस्या एक जीवित समस्या है। और जो स्त्रियाँ समझती हैं कि पर्दे से वे मुक्त हो चुकी हैं, वे किस हद तक पुरुषों के समान स्वतंत्रता पा चुकी हैं, इसमें सन्देह है। दुःख है कि इस सम्बन्ध में यह बात कम समझी जाती है कि स्त्रियाँ तब तक स्वतंत्र नहीं हो सकतीं, न उनका पर्दा ही छूट सकता है जब तक वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र न हों।

स्त्रियों को कैसी शिक्षा दी जाय [२]

गांधीजी स्त्री-शिक्षा के कट्टर पक्षपाती थे। आज यह बात कुछ ऐसी उल्लेखनीय ज्ञात नहीं होगी क्योंकि अब शायद ही कोई ऐसा तबका है, जो खुल्लमखुल्ला इसका विरोध करे, पर गांधीजी ने जिन दिनों सार्वजनिक जीवन में कदम रक्खा था याने पचास साल पहले ऐसे विचार बहुत क्रान्तिकारी समझे जाते थे। अब भी स्त्री-शिक्षा के पक्ष में प्रचार की आवश्यकता है, क्योंकि यद्यपि लोगों ने सैद्धान्तिक रूप से स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता तथा उपयोगिता मान ली है, पर व्यावहारिक रूप में वे घर की लड़कियों को शिक्षित करने को उतना महत्त्व नहीं देते जितना वे लड़कों की शिक्षा को देते हैं। सच तो यह है कि लड़कियों को जितनी भी शिक्षा दी जाती है, वह बहुत कुछ इस कारण दिया जाता है कि यह समझा जाता है कि विवाह के बाजार में शिक्षिता लड़की का मूल्य अधिक हो जाता है।

यह भी देखा गया है कि सुन्दरी लड़कियों की शिक्षा अक्सर अधिक दूर बढ़ नहीं पाती, पर अपेक्षाकृत साधारण चेहरों की लड़कियों को ही उच्च शिक्षा की नौबत आती है। कुछ बहुत उन्नत घरानों में ही इस नियम का व्यतिक्रम देखा जाता है, जहाँ लड़कियों को लड़कों के साथ उच्च शिक्षा दी जाती है।

गांधीजी का यह मत था कि शिक्षा तो जरूरी है, पर स्त्रियों में बहुत-सा काम शिक्षा के बगैर ही किया जा सकता है, याने शिक्षा के पहले ही वे काम शुरू किये जा सकते हैं। उन्होंने स्त्रियों की एक सभा में भाषण देते हुए कहा था:—

"फौरन लिखना-पढ़ना सिखाये बगैर ही हम स्त्रियों को यह समझा दे सकते हैं कि उनकी दशा कितनी खराब है। स्त्री में पुरुष के बराबर ही मानसिक गुण हैं, और उसे पुरुष के सारे कामों में खूब ब्यौरे में हिस्सा लेने का अधिकार है। उसे भी उतनी ही स्वतंत्रता भोगने का अधिकार है जितना पुरुष को है। पुरुष को अपने कार्य क्षेत्र में जिस प्रकार श्रेष्ठता प्राप्त है, उसी प्रकार स्त्री को भी अपने कार्य क्षेत्र में श्रेष्ठता होना चाहिये। यह परिस्थिति लिखने-पढ़ने की अपेक्षा न करते हुए स्वाभाविक रूप से चालू होनी चाहिये। अत्यन्त दूषित रीति-रिवाजों की बदौलत बिलकुल मूढ़ तथा निकम्मे पुरुष को स्त्रियों के मुकाबले में श्रेष्ठता प्राप्त है, ऐसी श्रेष्ठता जिस पर उसे कोई हक नहीं, और जो उसे नहीं मिलनी चाहिये। हमारे बहुत-से आन्दोलन स्त्रियों के पिछड़ेपन के कारण बीच में ठप्प हो गये। इसी कारण से हमारे बहुत-से कार्यों का कोई उपयुक्त परिणाम नहीं मिलता। हमारी हालत एक 'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे' कौड़ियों पर जान देने-वाला, पर अशर्फी लुटानेवाले की तरह हो रही है जो अपने व्यवसाय में काफी धन नहीं लगाता।"

यद्यपि गांधीजी ने यह कहा है कि काम फौरन शुरू करने की दृष्टि से स्त्री-शिक्षा के लिये प्रतीक्षा किये बिना ही स्त्रियों में जागृति पैदा की जाय, पर वे चाहते थे कि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय क्योंकि ऐसा किये बगैर समस्या हल नहीं हो सकती।

उन्होंने इस कारण स्पष्ट लिख दिया "यद्यपि स्त्रियों को लिखना-पढ़ना सिखाये बगैर ही कई अच्छे तथा उपयोगी काम किये जा सकते हैं, पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि बिना शिक्षा के कई क्षेत्रों में हम बिलकुल आगे नहीं बढ़ सकते। शिक्षा से बुद्धि विकसित होती है,

स्त्रियों को कैसी शिक्षा दी जाय [२]

गांधीजी स्त्री-शिक्षा के कट्टर पक्षपाती थे। आज यह बात कुछ ऐसी उल्लेखनीय ज्ञात नहीं होगी क्योंकि अब शायद ही कोई ऐसा तबका है, जो खुल्लमखुल्ला इसका विरोध करे, पर गांधीजी ने जिन दिनों सार्वजनिक जीवन में कदम रक्खा था याने पचास साल पहले ऐसे विचार बहुत क्रान्तिकारी समझे जाते थे। अब भी स्त्री-शिक्षा के पक्ष में प्रचार की आवश्यकता है, क्योंकि यद्यपि लोगों ने सैद्धान्तिक रूप से स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता तथा उपयोगिता मान ली है, पर व्यावहारिक रूप में वे घर की लड़कियों को शिक्षित करने को उतना महत्त्व नहीं देते जितना वे लड़कों की शिक्षा को देते हैं। सच तो यह है कि लड़कियों को जितनी भी शिक्षा दी जाती है, वह बहुत कुछ इस कारण दिया जाता है कि यह समझा जाता है कि विवाह के बाजार में शिक्षिता लड़की का मूल्य अधिक हो जाता है।

यह भी देखा गया है कि सुन्दरी लड़कियों की शिक्षा अक्सर अधिक दूर बढ़ नहीं पाती, पर अपेक्षाकृत साधारण चेहरों की लड़कि[illegible] को ही उच्च शिक्षा की नौबत आती है। कुछ बहुत उन्नत घरानें ही इस नियम का व्यतिक्रम देखा जाता है, जहाँ [illegible] के साथ उच्च शिक्षा दी जाती है।

गांधीजी का यह मत था कि [illegible]
बहुत-सा काम शिक्षा के बगैर ही [illegible]
पहले ही वे काम शुरू किये [illegible]
सभा में भाषण देते [illegible]

"एक दम्पति के जीवन में पुरुष का जीवन घर के बाहर से अधिक सम्बन्ध रखता है, इस कारण यह उचित है कि वह बाहर के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करे। [illegible] का ही मंडल है, इसलिये संतान-पालन तथा घर के [illegible] में स्त्रियों का ज्ञान अधिक हो। यह मैं नहीं [illegible] प्रकोष्ठों में बाँटा जाय, या यह भी नहीं [illegible] शाखायें किसी अंश के लिये बन्द हों पर [illegible] सिद्धान्तों को आधार न मानकर शिक्षा का [illegible] का जीवन विकसित होकर पूर्णता को नहीं पहुँच सकता।

दूसरे शब्दों में गांधीजी के आदर्श समाज में स्त्री और पुरुष [illegible] मंडल अलग-अलग होंगे, वे एक दूसरे के पूरक हैं। [illegible] स्त्रियों की अंग्रेजी-शिक्षा को बहुत आवश्यक नहीं समझते थे।

उनका कहना था स्त्रियों के लिये अंग्रेजी [illegible] आवश्यक है या नहीं, इसपर मैं दो शब्द कहना चाहूँगा। मैं इस [illegible] पर पहुँच चुका हूँ कि न तो हमारे देश के पुरुषों को [illegible] और न स्त्रियों को ही साधारण हालतों में अंग्रेजी शिक्षा की कोई आवश्यकता है। इस में सन्देह नहीं कि हमारी राजनीति में [illegible] तथा सहयोग करने के लिये अंग्रेजी की शिक्षा आवश्यक है। पर मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि स्त्रियाँ रोजी कमाने के लिये [illegible] या [illegible] कामों में हिस्सा लें। जो थोड़ी सी स्त्रियाँ अंग्रेजी सीखना चाहें, वे पुरुषों के विद्यालयों में भर्ती होकर शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं।"

मजे की बात है कि इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से बहुत नरम होने पर भी व्यावहारिक रूप से वे बराबर अंग्रेजी पढ़ी-लिखी स्त्रियों

उसमें तीव्रता आती है, कल्याण करने की योग्यता भी बढ़ जाती है। मैंने पढ़ने-लिखने को कभी भी अनावश्यक रूप से अधिक मूल्य नहीं दिया। मैं तो केवल इसको उचित मान्यता भर देना चाहता हूँ। मैंने समय-समय पर यह बात कही है कि अशिक्षा का कारण दर्शाकर पुरुषों को कोई अधिकार नहीं है कि वे स्त्रियों को समान अधिकारों से वंचित रक्खें। पर इन प्राकृतिक अधिकारों का स्त्रियाँ सदुपयोग करें, समझकर उपयोग करें, किसी के बहकावे में न आवें, उन अधिकारों के विस्तार के लिये संग्राम करें, यह जरूरी है कि वे शिक्षिता हों। + + + बहुत-सी पुस्तकें ऐसी हैं जिनके पढ़ने से निर्मल आनन्द प्राप्त होता है, शिक्षा के बिना स्त्रियाँ उनका रस लेने में भी असमर्थ रहेंगी। ऐसा कहना कोई अत्युक्ति नहीं कि अनपढ़ मनुष्य और पशु में कोई बहुत फर्क नहीं है। इस कारण स्त्रियों के लिये शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिये।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी स्त्रियों को पुरुषों की तरह शिक्षित देखना चाहते थे। पर अब हम असली प्रश्न पर आती हूँ। क्या वे यह चाहते थे कि स्त्रियों को हु-बहू वही शिक्षा मिले जो पुरुषों को दी जाती है ?

इसका उत्तर तो पहले ही गांधीजी के उन शब्दों में आ गया है कि पुरुष तथा स्त्रियाँ बराबर जरूर हैं, पर एकदम एक नहीं। उनके विचारों का सार यह है कि घर के जीवन में स्त्रियाँ प्रधान हैं, इस कारण वे घर के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करें, और पुरुष का जीवन बाहर का अधिक है, इस कारण वे उसी के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करें। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था:—

"इस मन्तव्य से ज्ञात होता है कि साधारण रूप से स्त्रियों के सम्बन्ध में आप के विचार बिलकुल अनुप्राणित करनेवाले नहीं हैं। ++ संभव है कि कुछ लड़कियाँ ऐसी भी हों जो आधे दर्जन रोमियों की जुलियट हैं, पर ऐसे मामले में भी यह जाहिर है कि आधे दर्जन रोमियों हैं। XX एक विश्व वंदित व्यक्ति से इस प्रकार के मन्तव्य मानों उसी सड़ी-गली कहावत का समर्थन-सा लगता है कि 'नारी नरक का द्वार है'।"

इसपर महात्माजी ने स्वाभाविक रूप से यह कहा कि उनका उद्देश्य कदापि नारी जाति का अपमान नहीं था, और ऐसा वे कर नहीं सकते। उन्होंने अपने विचारों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"आधुनिक लड़की का एक विशेष अर्थ है। इस कारण मन्तव्य को कुछ अंश पर लागू करने का कोई अर्थ नहीं होता। पर जितनी भी लड़कियाँ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे सब आधुनिक लड़कियों की श्रेणी में नहीं आतीं। मैं ऐसी बहुत-सी शिक्षिता लड़कियों को जानता हूँ जिनको आधुनिक लड़कियों की मनोवृत्ति छू भी नहीं गई है। पर कुछ-कुछ ऐसी भी हैं जो आधुनिक लड़की बन चुकी हैं।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि आधुनिक लड़की से गांधीजी का मतलब केवल दुश्चरित्रा आधुनिक लड़कियों से था। अवश्य ही आधुनिक हो या प्राचीन, किसी भी ऐसी लड़की का समर्थन नहीं किया जा सकता, जो छः छः प्रेमियों को नचाती हो। ऐसी लड़की को तो वेश्या कहना ही उचित होगा। ऐसी लड़की के लिये आधुनिक शब्द का प्रयोग उस शब्द का अपव्यवहार-मात्र है। वह आधुनिक किस अर्थ में है? इस प्रकार का व्यवहार तो बहुत प्राचीन काल से है। इस प्रसंग में आधुनिकता को घसीटना किसी प्रकार उचित नहीं था।

गांधीजी ने इस कारण ऐसा किया कि उनको ऐसा जान पड़ा कि आधुनिकता की प्रवृत्ति स्वैरिणी वृत्ति की ओर है। ऐसी हालत में उनका इस प्रसंग मे ऐसा लिखना उचित था।

पर उन्होंने स्त्रियो के प्रसाधन के सम्बन्ध मे जो बातें कहीं, विचारणीय हैं। उनकी तरह शीत, राग, भय, क्रोध व्यक्ति के लि कपड़ा पहनने का उद्देश्य केवल धूप, पानी, हवा से बचना था, प साधारण व्यक्तियों के लिये अवश्य ही और भी उद्देश्य हैं Aesthetics या सौंदर्यशास्त्र भी एक शास्त्र है। प्राचीनकाल से शृंगा करना एक कला के रूप मे स्वीकृत है। सुन्दर लगने की इच्छा केवल रमणेच्छा ही हो, यह समझना गलत है।

महात्माजी ने ८-१२-२७ के यंग इंडिया में लिखा था "व मैं यह पूछ सकता हूँ कि स्त्रियाँ क्यों पुरुषों से अधिक प्रसाधन कर हैं ? मुझे स्त्री मित्रों ने बताया है कि ऐसा वह पुरुष को खुश क के लिये करती है। मेरा यह कहना है कि यदि आपलोग जगत कार्यों मे भाग लेना चाहती है, तो आपको पुरुषों को खुश क के लिए सजने से इनकार कर देना चाहिए। यदि मैं स्त्री होकर पैदा होता तो मैं अवश्य ही पुरुष की इस गुस्ताखी के विरुद्ध कि स्त्री पुरुष की क्रीडा सामग्री है, विद्रोह का झंडा बुलंद करता। मैंने इस प्रकार अपने को स्त्री रूप में कल्पना की है, जिससे कि मैं उसके हृदय की बात जान सकूँ। मैं उस समय तक अपनी स्त्री के हृद का पता न पा सका था जब तक कि मैंने पहले के बर्ताव को छोड़क अपने कथित अधिकारों का त्याग कर उसे सारे अधिकार दे ये और उसका नतीजा यह है कि आज वह बिलकुल सीधी-साद अब उनके पास न तो कोई हार है न कोई और टीमटाम है

यह भी साफ हो गया कि महात्माजी किसी अर्थ में भी स्त्री-शिक्षा के विरोधी नहीं थे। हाँ, वे शिक्षा के साथ-साथ नैतिक मूल्यों की रक्षा भी चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि शिक्षा के नाम पर लोभ उच्छृंखल हो जाय। शिक्षा का उद्देश्य उनके नजदीक केवल ज्ञान नहीं था, वे शिक्षा को चरित्रनिर्माण का साधन मानते याने उसी हद तक शिक्षा को पसन्द करते थे जिस हद तक वह ऐसा सिद्ध हो।

विवाह प्रथा का समर्थन और विवाह की उम्र

यद्यपि महात्माजी विवाह पर निजी विचार रखते थे, फिर भी वे विवाह प्रथा को उड़ा देना नहीं चाहते थे। यदि महात्माजी के द्वारा प्रतिपादित विवाह-सम्बन्धी विचारों का मन्थन किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वे विवाहित ब्रह्मचर्य के पक्षपाती थे। हां, यदि कोई दम्पति ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके तो पति-पत्नी तभी संभोग करें जब उनमें पुत्र की इच्छा हो अन्यथा नहीं। जैसे उनके दार्शनिक विचारों पर बुद्ध का प्रभाव था, वैसे ही उनके विवाह सम्बन्धी विचारों पर स्पष्ट रूप से बुद्ध का प्रभाव परिलक्षित हो सकता।

भगवान बुद्ध के मतानुसार चिरकुमार तथा चिरकुमारित्व की हालत सब से अच्छी थी। यों तो वे उपासक के रूप में गृहस्थ भक्तों का अस्तित्व स्वीकार करते थे, पर भिक्षु को ही अर्हत पद के समीपतर समझते थे। महात्माजी ने इस रूप में विवाह-वर्जन को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, पर वे लोगों को विवाह करते हुए भी ब्रह्मचर्य का उपदेश देते रहे जैसा कि उन्होंने स्वयं एक उम्र के बाद रक्खा।

एक पत्र लेखक ने उन्हें लिखा कि आजकल जो विचार सुनीति तथा सदाचार के नाम से प्रचलित हैं, क्या वे विचार अस्वाभाविक नहीं हैं? पहली बात तो पत्र लेखक ने यह बताया कि यदि सदाचार सार्वदेशिक होता, तो विवाह के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् देशों में पृथक्-पृथक् विचार क्यों होते? पत्र लेखक का उद्देश्य यह था कि जैसा जिसका जी चाहे करे।

इसी को पुष्ट करने के लिये पत्र लेखक ने यह लिखा कि पशुओं में मनुष्यों की तरह विचार नहीं है, फिर भी उनमें न तो कुरोग है, न गर्भपात है, न शिशु-विवाह है। पत्र लेखक का कहना था कि सदाचार सम्बन्धी विचारों के होते हुए यह हाल है, फिर क्यों न समझा जाय कि सदाचार के कारण ही ऐसा है। पत्र लेखक ने इस ओर भी ध्यान दिलाया कि हिन्दू-विधवाओं की दुर्दशा इन्हीं विवाह के नियम के कारण है। दूसरे शब्दों में पत्र लेखक का कहना था कि विवाह-प्रथा को ही उठा दिया जाय।

इसपर महात्माजी ने उत्तर देते हुए लिखा कि पाश्चात्य में जो लोग अबाध प्रेम (free love) के प्रतिपादन करते हैं, वे इन तर्कों से काम लेते हैं कि नहीं, यह पता नहीं "पर मेरा यह निश्चित मत है कि विवाह प्रथा को बर्बर समझने की प्रथा स्पष्ट रूप से पाश्चात्य है।"

गांधीजी ने लिखा "मनुष्य तथा पशु में तुलना करना भूल है, और इसी तुलना के कारण सारा तर्क गलत पड़ गया है। बात यह है कि मनुष्य नैतिक सहजातों तथा नैतिक प्रथाओं के कारण पशु से श्रेष्ठतर है। मनुष्य तथा पशुओं में प्राकृतिक नियम का स्वरूप भिन्न है। मनुष्य में बुद्धि है, सदसद्विचार है और स्वतंत्र प्रेम है। पर पशु में ऐसी कोई बात नहीं है। यह कोई स्वाधीन कर्ता नहीं होता, और पाप-पुण्य तथा भलाई-बुराई में फर्क नहीं कर सकता। मनुष्य स्वाधीन कर्ता होने के कारण इन बारीकियों से परिचित है और जिस समय वह अपनी उच्चतर प्रकृति को प्रदर्शित करता है, उस समय वह पशु से बहुत ऊँचा उठ जाता है, पर जिस समय वह अपनी निम्नतर प्रकृति का अनुसरण करता है, उस समय वह पशु से भी नीचे उतर जाता है। जो जातियाँ बिलकुल असभ्य समझी जाती हैं, उनमें भी

मैथुनिक जीवन पर रोक-टोक [illegible] कहा जाय
कि रोक-टोक ही बर्बर है, तो [illegible] मनुष्य
के लिये विधि होनी चाहिये। [illegible] विधि
के अनुसार काम करे, तो चाहिए [illegible]
जाय। मनुष्य में कामनाएं पशु [illegible] यदि वह
अपने ऊपर से सब तरह की रोक-टोक [illegible] कामनाओं की
ज्वालामुखी इस प्रकार भड़क उठेगी कि [illegible] पर प्लावन हो
जायगी और मनुष्य-जाति का विनाश हो जायगा। मनुष्य पशु से
वहाँ तक श्रेष्ठतर है जहाँ तक कि वह आत्मसंयम से
काम लेता है।"

इस प्रकार पत्र-लेखक के प्रधान तर्क के सम्बन्ध में अपनी राय बता देने के बाद वे असली प्रश्न पर आते हुए लिखते हैं —

"आज जो रोग इतने फैले हुए हैं, उनकी तह में विवाह-सम्बन्धी विधियों को भंग करना है। मैं एक भी ऐसा उदाहरण जानना चाहूँगा जिसमें किसी ऐसे व्यक्ति को यह रोग हो गया है, जो सम्पूर्ण रूप से विवाह-सम्बन्धी नियमों का पालन करता रहा है। शिशु-हत्या, शिशु-विवाह इत्यादि इसी नियम के अपालन के कारण होते हैं। नियम तो यह है कि जिस समय व्यक्ति प्राप्तवयस्क हो जाय, स्वस्थ तथा संयमी है, और संतान चाहता या चाहती है, उसी समय अपने लिये वर या पत्नी ढूँढे। जो लोग कड़ाई के साथ इस नियम का पालन करते हैं और विवाह को एक पवित्र धर्म-कार्य समझते हैं, वे असुखी नहीं हो सकते। जहाँ पर विवाह धर्म-कार्य है, वहाँ मिलन शरीरों का नहीं,

बल्कि आत्माओं का होता है, और दो में से एक मर जाय तो भी वह टूट नहीं सकता। जहाँ यथार्थ रूप से आत्माओं का मिलन हो चुका है, वहाँ विधुर या विधवा के पुनर्विवाह की बात अकल्पनीय है, सही नहीं है, गलत है। जिस विवाह में विवाह की असली विधि की अवज्ञा की जाती है, वह विवाह नाम के योग्य ही नहीं है। यदि इस युग में ऐसे विवाह बहुत कम हैं, तो सच्चे हैं, तो इसमें विवाह प्रथा का दोष नहीं, बल्कि उसका वर्त्तमान स्वरूप दोष-युक्त है, उसमें सुधार होना चाहिये।"

महात्माजी इस प्रकार यह कदापि नहीं चाहते कि अबाध प्रेम के हक में विवाह-प्रथा को भंग कर दिया जाय। ब्रह्मचर्य, यहाँ तक कि विवाहित ब्रह्मचर्य के परम पक्षपाती होते हुए भी वे यह नहीं चाहते थे कि विवाह बंद कर दिया जाय। बात यह है कि एक तरफ परम आदर्शवादी होते हुए भी वे बहुत व्यावहारिक थे।

पत्र-लेखक का कुछ ऐसा कहना था कि विवाह कोई नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं है, बल्कि एक रिवाजमात्र है, एक ऐसा रिवाज जो धर्म तथा सदाचार के विरुद्ध है, और इसलिये इसका वर्जन होना चाहिये। इसके उत्तर में महात्माजी ने कहा—"इसके विपरीत विवाह एक ऐसी दीवार है जो धर्म की रक्षा करता है। यदि इस दीवार को तोड़ दिया जाय, तो धर्म का विनाश हो जायगा। धर्म की नींव ही संयम है, और विवाह का सिवा संयम के कोई मतलब ही नहीं होता। जो व्यक्ति आत्म-संयम नहीं करता, उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं प्राप्त होगा।"

महात्माजी ने इस सम्बन्ध में और भी लिखा—"यदि विवाह का बन्धन ढीला है और संयम का नियम पालित नहीं है, तब तो स्त्री एक झगड़े का कारण हो जायगी। यदि मनुष्य पशुओं की तरह असंयत हो जाय, तो वे सीधे सर्वनाश के मार्ग में चले जायेंगे। मेरा यह निश्चित मत है कि पत्र-लेखक ने जिन बुराइयों को बतलाया है, वे विवाह-प्रथा के उच्छेद से नहीं, बल्कि विवाह की विधि को ढंग से समझने तथा उसके पालन से ही दूर हो सकती हैं।

"मैं इस बात को मानता हूँ कि कुछ समाजों में बहुत निकट के रिश्तेदारों में शादी होती है, तो कुछ में यह निषिद्ध है, कुछ में बहु-विवाह है, तो कुछ में नहीं है। यह वांछनीय होते हुए भी कि सबमें एक ही नैतिक नियम होता, इस विविधता का अर्थ हर्गिज यह नहीं हो सकता कि रोक-टोकों का अन्त कर विवाह-प्रथा का ही अन्त कर दिया जाय। जैसे-जैसे हमारी अभिज्ञता बढ़ जायगी, हमारी सदाचार-सम्बन्धी धारणाएँ भी एक हो जायेंगी। आज भी सार्वदेशिक नीतिबोध एक विवाह को ही उत्तम आदर्श स्वीकार करता है और किसी भी धर्म में बहुविवाह बाध्यतामूलक नहीं है।"

इस प्रकार यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि गांधीजी के विचारों के अनुसार विवाह-प्रथा एक जरूरी प्रथा है, और विवाहों में भी एक विवाह सर्वोत्तम है, केवल यही नहीं, यही उत्तम है।

गांधीजी बाल-विवाह के कट्टर विरोधी थे। यह तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि उनका बचपन में ही विवाह हो गया था और इसके लिये वे बहुत दुखी थे। अपनी आत्मकथा में इस सम्बन्ध में उनके

दुःख की गहराई का पता लगता है। उन्होंने २६-८-२६ को 'यंग इंडिया' में इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा था। इस लेख का कारण यह था कि श्रीमती मारगरेट कजन्स ने उन्हें एक पत्र भेजा था जिसमें एक अत्यन्त दुःखद घटना का वर्णन था।

एक २६ साल के युवक के साथ एक १३ साल की कमजोर लड़की का विवाह हुआ था। ये लोग १३ दिन भी एक साथ नहीं रह पाये थे कि लड़की ने जलकर आत्महत्या कर ली। जब यह मामला अदालत में गया, तो यह प्रमाणित हो गया कि पति की अनवरत कामुकता स्त्री के लिए असहनीय हो गई और उसने आत्महत्या कर ली।

इसपर महात्माजी ने लिखा—"कैसे लड़की मरी यह प्रासंगिक नहीं, जो अकाट्य तथ्य हैं, उसे यों बताया जा सकता है —

(१) लड़की की शादी केवल १३ वर्ष की उम्र में हुई।

(२) लड़की में कोई मैथुनिक इच्छा नहीं थी; क्योंकि वह बराबर अपने पति का विरोध करती रही।

(३) पति ने बेरहमी से काम लिया।

(४) लड़की अब मर गई।

"एक पाशविक प्रथा को धार्मिक सहारा देना अधर्म है न कि धर्म। स्मृतियाँ विरोधी बातों से भरी पड़ी हैं। इन विरोधी बातों के अस्तित्व से एक ही बात समझ में आती है, वह यह कि जो वाक्य ज्ञात तथा स्वीकृत सदाचार के विरुद्ध पड़ते हैं, उन्हे प्रक्षिप्त समझा जाय। आत्म-संयम पर सुन्दर से सुन्दर वाक्य लिखनेवाली कलम में पशु को प्रोत्साहित करनेवाले श्लोक नहीं लिख सकती थी।

पाप में डूबा हुआ तथा महाअसंयमी व्यक्ति ही यह कह सकता है कि कन्या के रजस्वला होने के पहले ही उसका विवाह कर दिया जाय। बल्कि जब तक लड़की कई वर्षों तक रजस्वला न होती रहे, उसकी शादी कर देना पाप समझा जाना चाहिये। रजस्वला होने के पहले तो कन्या की शादी की चर्चा ही न होनी चाहिये। जैसे पुरुष की रेख निकलना शुरू होते ही वह प्रजनन के योग्य नहीं हो जाता, उसी प्रकार रजस्वला होते ही कन्या गर्भ धारण करने के उपयुक्त नहीं हो जाती।

"बाल-विवाह एक नैतिक तथा शारीरिक बुराई है; क्योंकि इससे हमारा सदाचार क्षुण्ण होता है और शारीरिक क्षति होती है। इस प्रकार की प्रथा को जारी रखकर हम ईश्वर तथा स्वराज्य दोनों से दूर हो जाते हैं।"

कहना न होगा कि इस सम्बन्ध में इनसे जोरदार शब्द नहीं कहे जा सकते। ये शब्द ऐसे थे कि कहीं भी समझौते का कोई रास्ता नहीं छोड़ा था। इसपर एक कट्टर पाठक ने क्रोध में पत्र लिखकर कहा कि गांधीजी ने एकाध स्मृतिकार की नहीं, बल्कि सबकी बुराई कर डाली; क्योंकि पत्र-लेखक के अनुसार सभी स्मृतिकार लड़कियों की कम उम्र में शादी की व्यवस्था दे गये हैं। इस प्रकार स्मृतिकारों का भय दिखाकर पत्रकार ने बाल-विवाह के अन्य कारण देने चाहे।

पत्र-लेखक ने यह कहा कि बहुत कुछ सोचकर ही स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था रक्खी है। कम उम्र में शादी कर देना इस कारण जरूरी है कि लड़की कहीं प्रेम में पड़ गई तो फिर जटिलता

पाप में डूबा हुआ तथा महाअसंयमी व्यक्ति ही यह कह सकता है कि कन्या के रजस्वला होने के पहले ही उसका विवाह कर दिया जाय। बल्कि जब तक लड़की कई वर्षों तक रजस्वला न होती रहे, उसकी शादी कर देना पाप समझा जाना चाहिये। रजस्वला होने के पहले तो कन्या की शादी की चर्चा ही न होनी चाहिये। जैसे पुरुष की रेख निकलना शुरू होते ही वह प्रजनन के योग्य नहीं हो जाता, उसी प्रकार रजस्वला होते ही कन्या गर्भ धारण करने के उपयुक्त नहीं हो जाती।

"बाल-विवाह एक नैतिक तथा शारीरिक बुराई है; क्योंकि इससे हमारा सदाचार क्षुण्ण होता है और शारीरिक क्षति होती है। इस प्रकार की प्रथा को जारी रखकर हम ईश्वर तथा स्वराज्य दोनों से दूर हो जाते हैं।"

कहना न होगा कि इस सम्बन्ध मे इनसे जोरदार शब्द नहीं कहे जा सकते। ये शब्द ऐसे थे कि कहीं भी समझौते का कोई रास्ता नहीं छोड़ा था। इसपर एक कट्टर पाठक ने क्रोध में पत्र लिखकर कहा कि गांधीजी ने एकाध स्मृतिकार की नहीं, बल्कि सबकी बुराई कर डाली; क्योंकि पत्र-लेखक के अनुसार सभी स्मृतिकार लड़कियों की कम उम्र मे शादी की व्यवस्था दे गये हैं। इस प्रकार स्मृतिकारों का भय दिखाकर पत्रकार ने बाल-विवाह के अन्य कारण देने चाहे।

पत्र-लेखक ने यह कहा कि बहुत कुछ सोचकर ही स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था रक्खी है। कम उम्र मे शादी कर देना इस कारण जरूरी है कि लड़की कहीं प्रेम में पड़ गई तो फिर जटिलता

महात्माजी के इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि बाल-विवाह तो किसी भी हालत में नहीं होना चाहिये। पर वर का चयन कौन करे, इस प्रश्न पर जाकर वे अपने मुकदमे को कमजोर नहीं करना चाहते थे। इसके लिये उनसे चाहे कोई कितना ही लड़ ले, पर यही उनका विशेष तरीका था। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि उनको लड़कियों के द्वारा अपने लिये वर चुनने में विरोध नहीं था।

महात्माजी ने पत्र-लेखक के उस वक्तव्य का विरोध किया कि अधिक उम्र में पत्नी तथा माता बननेवाली स्त्री में तथा कम उम्र में पत्नी तथा माता बननेवाली लड़की में स्वास्थ्य का कोई फर्क नहीं होता। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में कोई निर्णय देने से इनकार किया कि यूरोप की स्त्रियाँ अधिक साध्वी होती हैं या भारत की। पर साथ ही यह कहा कि यदि यह मान भी लिया जाय कि भारतीय स्त्रियाँ अधिक साध्वी हैं, तो इससे यह तर्क कैसे निकलता है कि ऐसा बाल-विवाह के ही कारण है।

गांधीजी के इस लेख को पढ़कर एक बंगाली महिला ने लिखा कि बची स्त्रियों के दुःख को प्रकाश में लाने के लिये आप अशेष धन्यवाद के पात्र हैं। उस महिला ने एक उदाहरण भी दिया :—

"साल भर पहले कलकत्ते में ऐसी ही एक घटना हुई। लड़की की उम्र केवल दस साल की थी। पति के साथ दो रात विताने पति के पास जाने से कतई इनकार कर दिया। खैर, एक दि की माँ ने उसे पान देने के लिये उस पुरुष के पास भेजा वह लड़की यह सोचकर गई कि वह पान देकर लौट सकेगी

पर उस पुरुष ने दरवाजा बन्द कर दिया और वह कमरे से लौट न सकी। थोड़ी देर में एक भयावना आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। लड़की की माँ कमरे में पहुँची। वहाँ कमरा खुलने पर क्या देखती है कि ति देवता ने लड़की के सिर पर इतने जोर से मारा था कि वह मर चुकी थी। उस व्यक्ति पर मुकदमा चला और उसे फाँसी की सजा हुई।"

"मेरी परिचिता एक ब्राह्मण-कन्या की भी ऐसी ही कहानी है। उसकी शादी १० साल की उम्र में हुई थी। उसने पति-सहवास से इनकार किया, इसपर पति देवता ने दूसरी शादी कर ली। अब वह लड़की जवान है; पर बेचारी बाप के घर पर पड़ी है।

"मैं गाँव की स्त्रियों से सुनती हूँ कि कथित छोटी जातियों में अक्सर यहाँ पत्नी को पति पीटता है; क्योंकि उसे बहुत मुश्किल से पति के कमरे में ढकेला जाता है।"

इस पत्र-लेखिका के उत्तर में गांधीजी ने फिर से अत्यन्त जोरदार शब्दों में अपना विचार व्यक्त किया। यह तो स्पष्ट है कि गांधीजी सम्पूर्ण रूप से बाल-विवाह के विरोधी थे, और इस सम्बन्ध में वे स्मृतियों को भी धता बताने को तैयार थे।

अब यह देखा जाय कि वे विवाह के लिये क्या उम्र बताते थे। मद्रास के पचियाप्पा कालेज में बोलते हुए उन्होंने कहा था—"तुम्हें चाहिये कि तुम अपने काम पर इतना नियंत्रण रखो कि १६ साल से कम उम्र की लड़की से शादी करने से इनकार करो। यदि मेरा वश चलता तो मैं कन्याओं के लिये विवाह की उम्र कम से कम २० कर देता।

पर उस पुरुष ने दरवाजा बन्द कर दिया और वह कमरे से लौट न सकी। थोड़ी देर में एक भयावना आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। लड़की की माँ कमरे में पहुँची। वहाँ कमरा खुलने पर क्या देखती है कि पति देवता ने लड़की के सिर पर इतने जोर से मारा था कि वह मर चुकी थी। उस व्यक्ति पर मुकदमा चला और उसे फाँसी की सजा हुई।"

"मेरी परिचिता एक ब्राह्मण-कन्या की भी ऐसी ही कहानी है। उसकी शादी १० साल की उम्र में हुई थी। उसने पति-सहवास से इनकार किया, इसपर पति देवता ने दूसरी शादी कर ली। अब यह लड़की जवान है; पर बेचारी बाप के घर पर पड़ी है।

"मैं गाँव की स्त्रियों से सुनती हूँ कि कथित छोटी जातियों में अक्सर वहाँ पत्नी को पति पीटता है; क्योंकि उसे बहुत मुश्किल से पति के कमरे में ढकेला जाता है।"

इस पत्र-लेखिका के उत्तर में गांधीजी ने फिर से अत्यन्त जोरदार शब्दों में अपना विचार व्यक्त किया। यह तो स्पष्ट है कि गांधीजी सम्पूर्ण रूप से बाल-विवाह के विरोधी थे, और इस सम्बन्ध में वे स्मृतियों को भी धता बताने को तैयार थे।

अब यह देखा जाय कि वे विवाह के लिये क्या उम्र

मद्रास के पचियाप्पा कालेज में बोलते हुए उन्होंने क..

चाहिये कि तुम अपने काम पर इतना नियंत्रण रखो कि

उम्र की लड़की से शादी करने से २०

तो मैं कन्याओं के

महात्म्य में भी बीस साल बहुत जल्दी है। लड़कियों की कम उम्र में भी हालत होता है तथा इस सम्बन्धी बातचीत होती रहती है इस प्रश्न पर वे यहाँ जल्दी परिपक्व हो जाती हैं। मैं २० साल की कई इसके कियों को जानता हूँ, जो यहाँ की कथित आबोहवा के बावजूद विशेष वेत्र तथा कलुष-रहित हैं और चारों तरफ की आँधियों से अपनी द्वारा रक्षा करती रहती हैं।"

कुछ ब्राह्मणों का गांधीजी से कहना था कि उन्हें ब्राह्मणों में १६ साल की कोई लड़की नहीं मिल सकती; क्योंकि ब्राह्मण-कन्याओं की १०, १२ तथा १३ साल की उम्र में शादी हो जाती है। इसपर गांधीजी ने कहा—"यदि तुमसे संयम नहीं होता, तो ब्राह्मण मत रहो। और एक १६ साल की बाल-विधवा से शादी कर लो। यदि इस उम्र की ब्राह्मण विधवा न मिले, तो किसी भी जाति से किसी कन्या को लो। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुओं के देवता उस युवक को क्षमा कर देंगे, जो १२ साल की लड़की से बलात्कार करने के बजाय जाति के बाहर विवाह करता है। × × मैं वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादक रहा हूँ, पर ऐसे ब्राह्मणत्व से मुझे उबकाई आती जो अस्पृश्यता, कुमारी-विधवा, कुमारियों पर बलात्कार सहन करता है। यह तो ब्राह्मणत्व का मजाक है। ऐसे में ब्रह्मज्ञान की कहीं बू भी नहीं है।"

कन्याओं का कम उम्र में विवाह हो चुका है, उनके सम्बन्ध जरूरी था। क्या विवाह होने के कारण ही पति को होगा कि वह उसके साथ सहवास करे? इसपर गांधीजी के 'यंग इंडिया' में लिखा था :—

"भाँवर लगा लेने से ही एक अनैतिक तथा अमानुषिक भोट न नहीं हो जाता। मेरी क्षुद्र बुद्धि में १४ साल भी कम है। जो लड़की स्वयं अनैतिक है, उसके समर्थन में संदिग्ध प्रामाणिकता के हैं कि श्लोकों को उद्धृत करने से कुछ आता-जाता नहीं। मैंने कई मर माताओं के स्वास्थ्य को गिरते देखा है और जब एक तरफ तो दही विवाह और दूसरी तरफ जल्दी विधवा होना आ जाता है, तो मनुष्य की ट्रेजेडी सम्पूर्ण हो जाती है। × × लड़कियों को बाल-मातृत्व से बचाकर असामयिक वार्द्धक्य तथा मृत्यु से बचाना है और साथ ही कमजोर बच्चों को पैदा करने से रोकना है।"

विवाह के उद्देश्यों की जाँच

गांधीजी ने एक विवाह के अवसर पर दम्पति को एक भाषण दिया। इस भाषण मे उनका विवाह-सम्बन्धी सारा दृष्टिकोण आ जाता है। उन्होंने कहा—

"तुमलोग जानते हो कि मैं अनुष्ठानों में वहीं तक विश्वास करता हूँ जहाँ तक कि उनसे हममे कर्त्तव्यबुद्धि जाग्रत होती है।"× ×इन अनुष्ठानों में मंत्रोच्चारण करते हुए पति ने यह इच्छा प्रकट की कि वधू अच्छे तथा स्वस्थ पुत्र की जननी हो। मुझे इस इच्छा से कुछ घबड़ाहट या झिझक नहीं हुई। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रजनन बाध्यतामूलक है, इसका मतलब केवल इतना है कि यदि कोई व्यक्ति सन्तान चाहे तो उसके लिये कड़ाई के साथ धार्मिक आशय से विवाह करना चाहिये। जो सन्तान नहीं चाहता, उसे शादी करनी ही नहीं चाहिये। मैथुनिक वृत्ति को तृप्त करने के लिये जो शादी की जाती है, वह शादी ही नहीं है—वह तो व्यभिचार है।"

इस प्रकार यह साफ है कि महात्माजी के अनुसार विवाह का असली उद्देश्य, कम से कम शारीरिक संभोग का एकमात्र ध्येय पुत्रोत्पादन है। 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' यही दूसरे शब्दों में उनका ध्येय था। उन्होंने उल्लिखित प्रवचन में ही साफ-साफ कहा था—"आज के अनुष्ठान का यही मतलब है कि शारीरिक मिलन तभी होने दिया जाय जब दोनों तरफ से सन्तान के लिये स्पष्ट कामना है। सारी

धारणा ही पवित्र है। इस कारण जब भी शारीरिक मिलन हो तो वह भजनात्मक (prayerfully) वृत्ति से हो। ऐसे मिलन में प्राक्-क्रीड़ा का वह सब कोर्टशिप आदि अंग न होंगे जिनका उद्देश्य वृत्तियों को उत्तेजित करना तथा तृप्त करना है।

"यदि दम्पति की इच्छा केवल एक बच्चे के लिये है, तो सारे जीवन में एक ही बार शारीरिक मिलन हो। जो लोग नैतिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं हैं, वे शारीरिक मिलन न करें, और यदि वे करें, तो यह व्यभिचार है। यदि तुमने यह सीखा है कि विवाह कामप्रवृत्ति के चरितार्थ के लिये है, तो उसे भूल जाओ। ऐसा सोचना कुसंस्कार है। देखो न सारा अनुष्ठान ही पवित्र अग्नि के सामने किया जाता है। तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी काम के रूप में है, यह अग्नि उसका भस्म कर दे।

"मैं तुमलोगों के दिमाग से एक और कुसंस्कार को निकाल देना चाहता हूँ, जिसको आजकल खूब फैलाया जा रहा है। वह यह है कि संयम ठीक नहीं है और कामवृत्ति को मुक्तता के साथ चरितार्थ करना तथा मुक्त प्रेम ठीक है। इससे बढ़कर कोई गलत धारणा नहीं हो सकती। शायद तुम आदर्श तक पहुँच न पाओ, शायद तुम्हारा नफ्स जोर कर जाय, पर इस कारण आदर्श को नीचा मत करो और अधर्म को धर्म न बनाओ। ×× विवाह का उद्देश्य संयम तथा कामवृत्ति का उदात्तीकरण (sublimation) है।"

कहना न होगा कि गांधीजी के विवाह-सम्बन्धी विचार सम्पूर्ण रूप से यतिभावापन्न हैं। यद्यपि गांधीजी ने साफ-साफ यह नहीं कहा;

विवाह के उद्देश्यों की

गांधीजी ने एक विवाह के अवसर पर
दिया। इस भाषण में उनका विवाह-सम्बन्ध
जाता है। उन्होंने कहा—

"तुमलोग जानते हो कि मैं अनुष्ठानों में वह
हूँ जहाँ तक कि उनसे हममें कर्त्तव्यबुद्धि जाग्र
अनुष्ठानों में मंत्रोच्चारण करते हुए पति ने यह
वधू अच्छे तथा स्वस्थ पुत्र की जननी हो।
घबड़ाहट या झिझक नहीं हुई। इसका मतलब
बाध्यतामूलक है, इसका मतलब केवल इतना है कि
सन्तान चाहे तो उसके लिये कड़ाई के साथ धार्मिक
करना चाहिये। जो सन्तान नहीं चाहता, उसे शादी
चाहिये। मैथुनिक वृत्ति को तृप्त करने के लिये जो
है, वह शादी ही नहीं है—यह तो व्यभिचार है।"

इस प्रकार यह साफ है कि महात्माजी के अ
असली उद्देश्य, कम से कम शारीरिक संयोग का
पुत्रोत्पादन है। 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' यही दूसरे
ध्येय था। उन्होंने उल्लिखित प्रवचन में ही साफ
"आज के अनुष्ठान का यही मतलब है कि शारीरिक
दिया जाय जब दोनों तरफ से सन्तान के लिये स्पष्ट

धारणा ही पवित्र है। इस कारण जब भी शारीरिक मिलन हो तो वह भजनात्मक (prayerfully) वृत्ति से हो। ऐसे मिलन में प्राकृतिक रूप से वह सब कोर्टशिप आदि अंग न होंगे जिनका उद्देश्य वृत्तियों को उत्तेजित करना तथा तृप्त करना है।

"यदि दम्पति की इच्छा केवल एक बच्चे के लिये है, तो सारे जीवन में एक ही बार शारीरिक मिलन हो। जो लोग नैतिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं हैं, वे शारीरिक मिलन न करें, और यदि वे करें, तो वह व्यभिचार है। यदि तुमने यह सीखा है कि विवाह कामप्रवृत्ति के चरितार्थ के लिये है, तो उसे भूल जाओ। ऐसा सोचना कुसंस्कार है। क्यों न सारा अनुष्ठान ही पवित्र अग्नि के सामने किया जाता है। तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी काम के रूप में है, वह अग्नि उसको भस्म कर दे।

"मैं तुमलोगों के दिमाग से एक और कुसंस्कार को निकाल देना चाहता हूँ, जिसको आजकल खूब फैलाया जा रहा है। वह यह कि संयम ठीक नहीं है और कामवृत्ति की तृष्णा को ... करना तथा मुक्त प्रेम ठीक है। इससे ... हो सकती। शायद तुम ... बरस और कर

विवाह के उद्देश्यों की जाँच

गांधीजी ने एक विवाह के अवसर पर दम्पति को एक भाषण दिया। इस भाषण में उनका विवाह-सम्बन्धी सारा दृष्टिकोण आ जाता है। उन्होंने कहा—

"तुमलोग जानते हो कि मैं अनुष्ठानों में वहीं तक विश्वास करता हूँ जहाँ तक कि उनसे हममें कर्त्तव्यबुद्धि जाग्रत होती है।×× इन अनुष्ठानों में मंत्रोच्चारण करते हुए पति ने यह इच्छा प्रकट की कि वधू अच्छे तथा स्वस्थ पुत्र की जननी हो। मुझे इस इच्छा से कुछ घबड़ाहट या झिझक नहीं हुई। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रजनन बाध्यतामूलक है, इसका मतलब केवल इतना है कि यदि कोई व्यक्ति सन्तान चाहे तो उसके लिये कड़ाई के साथ धार्मिक आशय से विवाह करना चाहिये। जो सन्तान नहीं चाहता, उसे शादी करनी ही नहीं चाहिये। मैथुनिक वृत्ति को तृप्त करने के लिये जो शादी की जाती है, वह शादी ही नहीं है—यह तो व्यभिचार है।"

इस प्रकार यह साफ है कि महात्माजी के अनुसार विवाह का असली उद्देश्य, कम से कम शारीरिक संभोग का एकमात्र ध्येय, पुत्रोत्पादन है। 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' यही दूसरे शब्दों में उनका ध्येय था। उन्होने उल्लिखित प्रवचन में ही साफ-साफ कहा था— "आज के अनुष्ठान का यही मतलब है कि शारीरिक मिलन तभी होने दिया जाय जब दोनों तरफ से सन्तान के लिये स्पष्ट कामना है। सारी

धारणा ही पवित्र है। इस कारण जब भी शारीरिक मिलन हो तो वह भजनात्मक (prayerfully) वृत्ति से हो। ऐसे मिलन में काम-क्रीड़ा का वह सब कोर्टशिप आदि अंग न होंगे जिनका उद्देश्य इन्द्रियों को उत्तेजित करना तथा तृप्त करना है।

"यदि दम्पति की इच्छा केवल एक बच्चे के लिये है, तो सम्पूर्ण जीवन में एक ही बार शारीरिक मिलन हो। जो लोग नैतिक तथा शारीरिक रूप में स्वस्थ नहीं हैं, वे शारीरिक मिलन न करें, और यदि वे करें, तो यह व्यभिचार है। यदि तुमने यह सीखा है कि विवाह कामवृत्ति के चरितार्थ के लिये है, तो उसे भूल जाओ। ऐसा सोचना कुसंस्कार है। देखो न सारा अनुष्ठान ही पवित्र अग्नि के सामने किया जाता है। तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी काम के रूप में है, वह अग्नि उसको भस्म कर दे।

"मैं तुमलोगों के दिमाग से एक और कुसंस्कार को निकाल देना चाहता हूँ, जिसको आजकल खूब फैलाया जा रहा है। वह यह है कि संयम ठीक नहीं है और कामवृत्ति को मुक्तता के साथ चरितार्थ करना तथा मुक्त प्रेम ठीक है। इससे बढ़कर कोई गलत धारणा नहीं हो सकती। शायद तुम आदर्श तक पहुँच न पाओ, शायद तुम्हारा नफ्स जोर कर जाय, पर इस कारण ... तो नीचा मत करो और अधर्म को धर्म न बनाओ। ... उद्देश्य संयम तथा कामवृत्ति का ...

कहना न ... विचार सम्पूर्ण रूप से ... यह नहीं कहा,

विवाह के उद्देश्यों की जाँच

गांधीजी ने एक विवाह के अवसर पर दम्पति को एक भाषण दिया। इस भाषण में उनका विवाह-सम्बन्धी सारा दृष्टिकोण आ जाता है। उन्होंने कहा—

"तुमलोग जानते हो कि मैं अनुष्ठानों में वहीं तक विश्वास करता हूँ जहाँ तक कि उनसे हममें कर्त्तव्यबुद्धि जाग्रत होती है।" × × इन अनुष्ठानों में मंत्रोच्चारण करते हुए पति ने यह इच्छा प्रकट की कि वधू अच्छे तथा स्वस्थ पुत्र की जननी हो। मुझे इस इच्छा से कुछ घबड़ाहट या झिझक नहीं हुई। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रजनन बाध्यतामूलक है, इसका मतलब केवल इतना है कि यदि कोई व्यक्ति सन्तान चाहे तो उसके लिये कड़ाई के साथ धार्मिक आशय से विवाह करना चाहिये। जो सन्तान नहीं चाहता, उसे शादी करनी ही नहीं चाहिये। मैथुनिक वृत्ति को तृप्त करने के लिये जो शादी की जाती है, वह शादी ही नहीं है—वह तो व्यभिचार है।"

इस प्रकार यह साफ है कि महात्माजी के अनुसार विवाह का असली उद्देश्य, कम से कम शारीरिक संभोग का एकमात्र ध्येय पुत्रोत्पादन है। 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' यही दूसरे शब्दों में उनका ध्येय था। उन्होंने उल्लिखित प्रवचन में ही साफ-साफ कहा था—"आज के अनुष्ठान का यही मतलब है कि शारीरिक मिलन तभी होने दिया जाय जब दोनों तरफ से सन्तान के लिये स्पष्ट कामना है। सारी

ो कठिन हो गया। यदि केवल यह धारणा हो गई होती कि केवल ति-पत्नी में ही शारीरिक मिलन जायज है, तो गनीमत थी; पर यहाँ ो यह धारणा हो गई कि यदि पति-पत्नी ने सन्तानोत्पादन की च्छा के बगैर संभोग किया तो यह भी पाप है।

गांधीजी के विचार कुछ ऐसे ही थे। उन्होंने पति-पत्नी के भी ारीरिक मिलन को कभी अच्छे रंग में नहीं देखा। लूथर की तरह t is better to marry than to burn याने जलते रहने से विवाह रना अच्छा है, वे इसी को मानते थे। शारीरिक मिलन एक वैध आनन्द है ऐसा उन्होंने कभी नहीं माना, वे केवल इसे वहीं तक सहन करने के लिये तैयार थे जहाँ तक की वह सन्तानोत्पादन का एक साधन था। उस हालत में भी उस कार्य को भजनात्मक रूप में करने को कहा गया है।

गांधीजी ने परोक्ष रूप से ब्रह्मचर्य को ही आदर्श अवस्था माना; पर ऐसा करते हुए भी उन्होंने लोगों से चिरब्रह्मचारी या कुमार रहने के लिये नहीं कहा, विवाह के अन्दर ही ब्रह्मचर्य रखने को कहा, यह बहुत ही दूरदर्शिता की बात थी।

रोमन कैथलिक चर्च ने पादरियों को ब्रह्मचारी रहने के लिये बाध्य किया, इसका नतीजा क्या हुआ हमें मालूम है। दर्द रसेल ने इसका कुछ ब्योरा दिया है। वे लिखते हैं :—

"मध्ययुग में दुर्नीति बहुत अधिक फैली हुई थी—इसकी तस्वीर दि घृणा मालूम होती है। बिशपगण अपनी कन्याओं के साथ खुला पाप-मय जीवन बिताते थे और आर्कबिशपगण अपने भानजों को उस के

भी कठिन हो गया। यदि केवल यह धारणा हो गई होती कि केवल पति-पत्नी में ही शारीरिक मिलन जायज है, तो गनीमत थी; पर यहाँ तो यह धारणा हो गई कि यदि पति-पत्नी ने सन्तानोत्पादन की इच्छा के बगैर संभोग किया तो वह भी पाप है।

गांधीजी के विचार कुछ ऐसे ही थे। उन्होंने पति-पत्नी के भी शारीरिक मिलन को कभी अच्छे रंग में नहीं देखा। लूथर की तरह It is better to marry than to burn याने जलते रहने से विवाह करना अच्छा है, वे इसी को मानते थे। शारीरिक मिलन एक वैध आनन्द है ऐसा उन्होंने कभी नहीं माना, वे केवल इसे वहीं तक सहन करने के लिये तैयार थे जहाँ तक की वह सन्तानोत्पादन का एक साधन था। उस हालत में भी इस कार्य को भजनात्मक रूप से करने को कहा गया है।

गांधीजी ने परोक्ष रूप से ब्रह्मचर्य को ही आदर्श अवस्था माना; पर ऐसा करते हुए भी उन्होंने लोगों से चिरब्रह्मचारी या कुमार रहने के लिये नहीं कहा, विवाह के अन्दर ही ब्रह्मचर्य रखने को कहा, यह बहुत ही दूरदर्शिता की बात थी।

रोमन कैथोलिक चर्च ने पादरियों को ब्रह्मचारी रहने के लिये बाध्य किया, इसका नतीजा क्या हुआ हमें मालूम है। बर्ट्रेंड रसेल ने इसका कुछ ब्योरा दिया है। वे लिखते हैं:—

"मध्ययुग में दुर्नीति बहुत अधिक फैली हुई थी—इतनी अधिक कि घृणा मालूम होती है। बिशपगण अपनी कन्याओं के साथ खुला पाप-मय जीवन बिताते थे और आर्कबिशपगण अपने माशूकों को पास के

इलाकों में तैनात करते थे। पोप जान पन्द्रहवें को अगम्यगमन लिये सजा दी गई थी, उनपर और भी कई अपराध थे। कैंटरब सेन्ट अगस्टीन के कायम मुकाम मठाधीश के सम्बन्ध में ११७१ व जॉच से यह साबित हुआ कि वह एक ही गाँव में १७ अवैध सन्ता का पिता है। ११३० में स्पेन के सेन्ट पेलायो के एक मठाधीश सम्बन्ध में यह प्रमाणित हुआ कि उसने ७० स्त्रियों को उपपत्नी के रू में रक्खा है। लिएज के विशाप को १२७४ में इस कारण निका दिया गया कि उसके ६६ अवैध बच्चे थे। रिफार्मेशन के पहले य शिकायत बार-बार जोरों से की जाने लगी कि जिस कमरे में भर आत्मदोष स्वीकार करता था, उसे व्यभिचार के लिये इस्तेमाल किय जाता था। मध्ययुग के लेखकों के ब्योरों से ज्ञात होता है वि भिक्षुणियों के मठ वेश्यालयों की तरह हो रहे थे, उनकी दीवारों वे अन्दर सैकड़ों शिशुओं की हत्या की जाती थी। इसके अतिरिक्त पादरियों में अगम्यगमन तो एक खास अपराध ही था।"

गांधीजी से एक बार किसी ने पूछा कि यदि सन्तान की इच्छा न हो, तो क्या विवाह हो सकता है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा— "हर्गिज नहीं। मैं अफलातूनी विवाहों में विश्वास नहीं करता। ऐसा सुनने में आया है कि कई विवाह केवल स्त्री की रक्षा के लिये, न कि शारीरिक मिलन के लिये किया जाता है। पर ऐसी घटनाएँ कम ही होती हैं। मैंने पवित्र विवाहित जीवन पर जो कुछ भी लिखा, उसे तुम लोगों ने पढ़ा होगा।

"मैंने महाभारत में जो कुछ पढ़ा, रोज मुझपर उसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। उसके अनुसार व्यास ने नियोग किया।

व्यास के बारे में बताया जाता है कि वे सुन्दर नहीं थे, बल्कि वे असुन्दर ही थे। उनका रूप भयंकर बतलाया गया है। उन्होंने कोई कामोद्दीपक इशारा आदि नहीं किया और शारीरिक मिलन के पहले उन्होंने अपने सारे बदन को घी से चुपड़ लिया। उन्होंने इस कृत्य को कामप्रवृत्ति को चरितार्थ करने के लिये नहीं, बल्कि प्रजनन के लिये किया। सन्तान की इच्छा बहुत स्वाभाविक है, और यदि एक बार वह इच्छा पूर्ण हो गई, तो संभोग न हो।

"मनु ने पहली सन्तान को धर्मज और बाकी को कामज बतलाया है। संक्षेप में शारीरिक मिलन के सम्बन्ध में यही नियम है। और ईश्वर नियम के अलावा क्या है ? ईश्वर की आज्ञा का पालन करना ही नियम-पालन है।"

फिर गांधीजी ने इस विषय पर अपना उदाहरण देते हुए कहा—"याद रक्खो कि जब मैंने 'बा' पर काम दृष्टि से देखना छोड़ दिया, तभी मैंने विवाहित जीवन का पूरा आनन्द उठाना शुरू किया। मैंने उस समय पूर्ण संयम की प्रतिज्ञा की जब मैं अभी खूब जवान था और साधारण विचारों के अनुसार विवाहित जीवन को उपभोग करने में समर्थ था। एकाएक मुझे यह सूझ गया कि मैं (जैसा कि सभी) एक पवित्र मिशन लेकर पैदा हुआ हूँ। जिस समय मेरा विवाह हुआ था, उस समय मैं यह नहीं जानता था। जब मुझे होश आया, तो मैंने समझ लिया कि मैं जिस मिशन के लिये पैदा हुआ था, विवाह उसके आड़े न आवे। तभी मुझे सत्य-धर्म की पहचान हुई। हमलोगों के जीवन में सच्चा सुख तभी आया, जब हमने प्रतिज्ञा कर

ली। यद्यपि 'बा' कमजोर मालूम पड़ती हैं, पर उनके शरीर की कोंठी अच्छी है, और वह सवेरे से लेकर रात में देर तक काम करती रहती हैं। यदि वे मेरी कामुकता (lust) की पात्री बनती रहती, तो उनसे इस प्रकार निरंतर कार्य न होता।"

चतुराश्रम के सिद्धान्त मे भी गार्हस्थ्य के बाद वानप्रस्थ तथा सन्यास की व्यवस्था है, पर गांधीजी तो गार्हस्थ्य में पति-पत्नी के मिलन को बिलकुल, जहाँ तक हो सके, लुप्त कर देना चाहते हैं। यही उनका आदर्श है।

वे लिखते हैं—"पर मैं देर में जगा, इस अर्थ में देर, कि मैंने कुछ वर्षों तक विवाहित जीवन व्यतीत किया। तुमलोग इस माने में सौभाग्यशाली हो कि ठीक समय पर जगाये जा रहे हो। मेरा जिन दिनों विवाह हुआ था, उन दिनों परिस्थिति बिलकुल प्रतिकूल थी। इस समय तुम्हारे लिये परिस्थिति जितनी अच्छी हो सकती है, उतनी अच्छी है।"

इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी का आदर्श एक यति का आदर्श है, पर यह तो स्पष्ट है कि साधारण लोगों के लिये यह कठिन है। इस बात को गांधीजी बखूबी समझते थे। इस कारण उन्होंने उसी प्रवचन में कहा था—

"ढोंगी न बनो, और जो काम शायद तुम्हारे लिये असंभव है उसे करने की व्यर्थ चेष्टा में अपने स्वास्थ्य को खराब मत करो। संयम से कभी स्वास्थ्य खराब नहीं होता। जिस बात से स्वास्थ्य खराब होता है, वह संयम नहीं, ऊपरी अवदमन है। एक वास्तविक रूप

स्त्रियों को शिक्षा देने की बात बतलाई गई, पर पारिवारिक क्षेत्र में महात्माजी ने पुरुषों पर यह जिम्मेदारी डाली कि वे अपनी स्त्रियों को शिक्षा देकर अपनी बराबरी पर ले आवें।

उन्होंने कहा, "तुइमलकों से मेरा कहना यह है कि यदि तुम अधिक बौद्धिक ऐश्वर्ययुक्त हो या तुम में भावनायें अधिक जगी हैं, तो लड़कियों को भी उनसे समन्वित कर दो। उनके सच्चे शिक्षक और पथप्रदर्शक बनो, उनकी सहायता करो तथा उनका पथप्रदर्शन करो। तुम में विचारों, शब्दों तथा कार्यों का संपूर्ण सामंजस्य हो, तुम में आपस में कोई छिपी बात न हो, तुम्हारी आत्मा एक हो।"

महात्मा गांधी ने बराबर यह लिखा है कि उनकी आँखों में सीता आदर्श पत्नी थीं। एक पत्रलेखक ने उनसे पूछा कि पत्नी पति की अनिच्छा से राजनैतिक कार्य में भाग ले सकती है कि नहीं। इस पर उन्होंने लिखा—"मेरे लिये आदर्श पत्नी तो सीता हैं और आदर्श पति राम। पर सीता राम की बाँदी नहीं थी, या दोनों एक दूसरे के बन्दा और बाँदी थे। राम बराबर सीता का रूख देखकर चलते थे। जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ यह प्रश्न उठता ही नहीं। जिस क्षेत्र में सच्चा प्रेम है ही नहीं, उस क्षेत्र में पति-पत्नी का बन्धन कभी था ही नहीं। पर आज का हिन्दू समाज एक अजीब गड़बड़ घोटाला या भानमती का पिटारा है। जिस समय शादी होती है, पति-पत्नी एक दूसरे को कुछ भी नहीं जानते।

"धार्मिक ठप्पा, साथ-ही-साथ रिवाज और विवाहितों के जीवन का मामूली प्रवाह अधिकांश हिन्दू घरों की शान्ति के लिये जिम्मेदार

रा यह भंग नैतिक है, न कि शारीरिक। पर इसमें विवाह विच्छेद का प्रश्न नहीं आता। पति और पत्नी अलग अवश्य हो जाते हैं, पर इसलिये अलग होते हैं कि वह उद्देश्य सिद्ध हो जिसके लिये वे संयुक्त हुए थे। हिन्दू-धर्म पति तथा पत्नी को एकदम बराबर समझता है। लेकिन, यह रिवाज अवश्य भिन्न हो गया है, मालूम नहीं किस वक्त से हुआ। हिन्दू-धर्म ने पति तथा पत्नी को आत्म-साक्षात्कार के लिये सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र छोड़ रक्खा है, क्योंकि इसी के लिये और केवल इसी के लिये उनका जन्म हुआ है।"

यद्यपि ऊपर के वर्णन से बात बहुत साफ नहीं होती, क्योंकि उच्चतर आदर्श क्या है, इस सम्बन्ध में मतभेद की गुंजाइश है। ईश्वर को प्राप्त करना उनके अनुसार उच्चतर आदर्श है, यह तो मीरा की उपमा से ही स्पष्ट है। जिस समय भारतवर्ष पराधीन था, उस समय सत्याग्रह में शामिल होना भी शायद उच्चतर आदर्श था। प्रसंग से यह शेषोक्त बात ज्ञात होती है।

बाकी बातों में क्या उच्चतर आदर्श है क्या नहीं, इस सम्बन्ध में महात्माजी के लेख से कोई पथप्रदर्शन नहीं होता। हाँ, मांस खाने के विषय में उन्होंने दो-चार वाक्य लिखे हैं जो इस सम्बन्ध में कुछ रोशनी डालते हैं। उनका कहना है कि यदि पुरुष और स्त्री दोनों पहले से मांस खाते रहे हों, पर बाद को स्त्री मांस खाना छोड़ दे, तो स्त्री को अधिकार नहीं है कि अब वह मांस पकाना छोड़ दे। गान्धीजी के शब्द ये हैं—"पर यह देखते हुए कि स्त्री का काम है घर सम्हालना, और इस कारण खाना पकाना, वह घर भर के लिये मांस पकाने

दोलन करके विवाह को रोकना चाहिए था। उनका सुझाव यह कि नौजवानों को टोली बनाकर ऐसे विवाहों को रोकना चाहिए। पर प्रश्न तो यह था कि इस विशेष क्षेत्र में क्या किया जाता। ाह हो गया, इस कारण क्या उसे मान लिया जाता या ी अन्य मार्ग को अपनाया जाता? गान्धीजी ने उत्तर में ा—"पत्रलेखक के पत्र से पता चल रहा है कि कभी यह विवाह नेवाला व्यक्ति एक परोपकारी व्यक्ति था। क्या उसे इसलिये ी नहीं किया जा सकता कि वह उस लड़की को सेवासदन या किसी शिक्षा-संस्था में रख दे, और जब वह बड़ी हो जाय, उस पर यह छोड़ा जाय कि उस पुरुष के साथ रहे, या इस ाह बन्धन को रद्द (regard the marriage bond as a nullity) मकर चले?"

कहना न होगा कि इस विशेष उदाहरण में गान्धीजी ने विवाह न को छेद्य मानकर एक ऐसी बात कही, जो इनके पहले लिखित वचनों से कहीं अधिक क्रान्तिकारी बात है। अवश्य लिखित वचन के बाद ही ये वचन आते हैं, जिससे इस वचन क्रान्तिकारित्व कुछ कम हो जाता है—

"पर हमारे समाज की इस म्रियमान अवस्था में यह कदम व है या नहीं, पर चाहे संभव न हो, यह कोई कारण नहीं अच्छे चरित्र के नौजवान दया की टोलियाँ (bands of mercy) ाकर शिशु विवाह को हर न्यायपूर्ण तथा वैध तरीके से रोकें र जहाँ भी हो सके बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करायें।"

आन्दोलन करके विवाह को रोकना चाहिए था। उनका सुझाव यह । कि नौजवानों की टोली बनाकर ऐसे विवाहों को रोकना चाहिए।

पर प्रश्न तो यह था कि इस विशेष क्षेत्र मे क्या किया जाता। वाह हो गया, इस कारण क्या उसे मान लिया जाता या मी अन्य मार्ग को अपनाया जाता? गान्धीजी ने उत्तर मे खा—"पत्रलेखक के पत्र से पता चल रहा है कि कभी यह विवाह रनेवाला व्यक्ति एक परोपकारी व्यक्ति था। क्या उसे इसलिये जी नहीं किया जा सकता कि वह उस लड़की को सेवासादन या सी किसी शिक्षा-संस्था मे रखवा दे, और जब वह बड़ी हो जाय, व उस पर यह छोड़ा जाय कि उस पुरुष के साथ रहे, या इस वाह बन्धन को रद्द (regard the marriage bond as a nullity) मझकर चले?"

कहना न होगा कि इस विशेष उदाहरण मे गान्धीजी ने विवाह न्धन को छेद्य मानकर एक ऐसी बात कही, जो इनके पहले ल्लिखित वचनो से कहीं अधिक क्रान्तिकारी बात है। अवश्य ल्लिखित वचन के बाद ही ये वचन आते हैं, जिससे इस वचन का क्रान्तिकारित्व कुछ कम हो जाता है—

"पर हमारे समाज की इस म्रियमान अवस्था मे यह कदम भव है या नहीं, पर चाहे संभव न हो, यह कोई कारण नहीं के अच्छे चरित्र के नौजवान दया की टोलियाँ (bands of mercy) बनाकर शिशु विवाह को हर न्यायपूर्ण तथा वैध तरीके से रोकें और जहाँ भी हो सके बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करवायें।"

उम्र की किसी लड़की को शादी में न देने तथा उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर देने को कड़ाई के साथ लागू किया जाय।"

इसपर प्रश्न यह उठता है कि यदि कोई व्यक्ति ६० साल की उम्र में काम वासना अनुभव करता है और वह उसे रोक नहीं पाता, तो वह क्या करे? समाज इसके लिये क्या समाधान देता है? गान्धीजी ने जो तरीका बतलाया कि लड़की बीस साल की हो और उसकी राय के विरुद्ध विवाह न हो, तो ऐसी अवस्था में तो उस व्यक्ति से कोई लड़की विवाह नहीं करेगी। फिर वह बूढ़ा क्या करे?

इस पर गान्धीजी का कहना है—"समाज के निकट ऐसे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है और वह इसके लिये बाध्य भी नहीं है कि कोई उत्तर दे। समाज का तो काम बस इतना ही है कि लड़कियों को अन्ध कामुकता से बचा ले। समाज के कर्त्तव्यों में से यह नहीं है कि कामुकों की वासनाओं को चरितार्थ करने के साधन पैदा करे। पर व्यावहारिक रूप से देखा जायगा कि जब सारे सामाजिक वातावरण में पवित्रता रहेगी, तो इससे कामुकों का काम शान्त पड़ जायगा।"

महात्माजी ने यह जो कहा कि लड़की की उम्र २० हो और उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह न हो, इन शब्दों में उनके विवाह सम्बन्धी विचारों का सार भाग आ जाता है। पर उन्होंने स्पष्ट शब्दों में विवाह में प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है। उसका ब्यौरा यों है। एक पत्र-लेखक ने लिखा—

"विवाह-संबंधी निषेध सब जगह एक-से नहीं है और अधिकतर सामाजिक रीति-रिवाजों पर निर्भर हैं। इस संबंध में रीति-रिवाज प्रांत-प्रांत में यहाँ तक कि हर कमिश्नरी में अलग-अलग हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक नवजवान को यह अधिकार है कि सब सामाजिक रीति-रिवाजों तथा निषेधों के साथ मनमानेपन का बर्ताव करे। ऐसा करने के पहले उन्हें चाहिए कि वे जनमत को अपने मत पर ले आवें। इस बीच में ऐसे व्यक्तियों को चाहिए कि प्रतीक्षा करें या वे यदि ऐसा न कर सकें तो सामाजिक बहिष्करण के परिणामों का शान्तिपूर्वक तथा चुपचाप सामना करें।

"इसके साथ ही समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे लोगों के प्रति जो समाज के नियम को नहीं मानते, एक हृदयहीन तथा विमाता की तरह रुख अख्तियार न करे। पत्रलेखक ने जिस मामले का जिकर किया है, यदि वह सत्य है, तो इसमें इनको आत्महत्या के लिये मजबूर करने का सारा दोष समाज पर है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी प्रेम याने विवाहार्थी तथा विवाहार्थिनी की इच्छा को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। जो व्यक्ति मामा और भाञ्जी में प्रेम तक को महत्त्व देने के लिए तैयार था, वह साधारण श्रेणी में जहाँ कोई इस प्रकार का सामाजिक नियम नहीं तोड़ा जा रहा है, विवाहार्थी तथा विवाहार्थिनी के प्रेम को कितना महत्त्व दे सकता है, यह अनुमेय है। अवश्य वे प्रेमियों को यह भी चेतावनी देते हैं कि यदि किसी कारण से समाज उनके प्रेम

"एक वैश्य महाशय की एक सोलह साल की लड़की थी। उस लड़की का एक इक्कीस साल का मामा था, जो उसी शहर में रहकर कालेज में पढ़ता था। दोनों में गुप्त प्रेम हो गया। लड़की शायद गर्भवती हो गई। जब बात खुली, तो उन दोनों ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। लड़की तो फौरन मर गई, पर लड़का अस्पताल में दो दिन बाद मर गया। इस घटना की इतनी चर्चा हुई कि लड़की के माता-पिता के लिए शहर में रहना असम्भव हो गया। × × मैंने उन्हीं दिनों लोगों को यह कहकर परेशान कर दिया था कि ऐसी परिस्थिति मे प्रेमियों को अपनी राह जाने देना चाहिए था। पर मेरी आवाज तो नक्कारखाने में तूती की आवाज रही। इस सम्बन्ध मे आपका मत क्या है ?"

इस पर लिखते हुए महात्माजी ने एक सुलझे हुए जज की तरह लिखा—"मेरी राय में ऐसे विवाह जो निपिद्ध रहे हैं, एकाएक एक व्यक्ति की इच्छा पर स्वीकृत नहीं हो सकते और न समाज को या उन व्यक्तियों के रिश्तेदारों को ही यह हक है कि वे ऐसे युवकों तथा युवतियों पर अपनी इच्छा लादें या उनकी स्वतंत्रता घटावें जो ऐसा विवाह करना चाहते हैं। पत्र-लेखक ने जो उदाहरण दिया है, उसमें दोनों पक्ष सयाने हो चुके थे। वे अपने लिए सोचने मे समर्थ थे। यदि वे विवाह करना चाहते थे तो किसी को यह हक नहीं था कि उन्हे इससे जबरदस्ती रोके। समाज अधिक-से-अधिक यही कर सकता था कि विवाह को स्वीकार न करे। पर यह तो जुल्म की हद थी कि उन्हे आत्महत्या के लिए मजबूर किया गया।

"विवाह-संबंधी निषेध सब जगह एक-से नहीं हैं और अधिकतर सामाजिक रीति-रिवाजों पर निर्भर हैं। इस संबंध में रीति-रिवाज प्रांत-प्रांत में यहाँ तक कि हर कमिश्नरी में अलग-अलग हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक नवजवान को यह अधिकार है कि सब सामाजिक रीति-रिवाजों तथा निषेधों के साथ मनमानेपन का बर्ताव करे। ऐसा करने के पहले उन्हें चाहिए कि वे जनमत को अपने मन पर ले आयें। इस बीच में ऐसे व्यक्तियों को चाहिए कि प्रतीक्षा करें या वे यदि ऐसा न कर सकें तो सामाजिक बहिष्करण के परिणामों का शान्तिपूर्वक तथा चुपचाप सामना करें।

"इसके साथ ही समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे लोगों के प्रति जो समाज के नियम को नहीं मानते, एक हृदयहीन तथा विमाता की तरह रुख अख्तियार न करे। पत्रलेखक ने जिस मामले का जिक्र किया है, यदि वह सत्य है, तो इसमें इनको आत्महत्या के लिये मजबूर करने का सारा दोष समाज पर है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी प्रेम याने विवाहार्थी तथा विवाहार्थिनी की इच्छा को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। जो व्यक्ति मामा और भाञ्जी में प्रेम तक को महत्त्व देने के लिए तैयार था, वह साधारण क्षेत्रों में जहाँ कोई इस प्रकार का सामाजिक नियम नहीं तोड़ा जा रहा है, विवाहार्थी तथा विवाहार्थिनी के प्रेम को कितना महत्त्व दे सकता है, यह अनुमेय है। अवश्य वे प्रेमियों को यह भी चेतावनी देते हैं कि यदि किसी कारण से समाज उनके प्रेम

न विवाह हो सकता है, न होना चाहिये। महात्माजी के अन्य मतों को देखते हुए यह बहुत ही मार्के की बात है कि वे प्रेम को विवाह के लिये अपरिहार्य मानने को तैयार थे।

पर वे अपने आधारगत विचार को नहीं छोड़ते। उनके लिए विवाह शारीरिक सुख का साधन नहीं, उनके लिये विवाह का उद्देश्य पुत्रोत्पादन है। उन्होंने इसी विषय का अनुसरण करते हुए ५-६-३७ को 'हरिजन' में लिखा—

"विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की कथा इसका एक बहुत अच्छा प्रमाण है कि केवल संतानोत्पादन के लिये किया हुआ शारीरिक मिलन ब्रह्मचर्य के उच्चतम आदर्श के साथ सामंजस्यहीन है। पर इस सारी कथा को आक्षरिक रूप से लेने की आवश्यकता नहीं। शारीरिक आनन्द के लिये जो संभोग किया जाता है, वह पशुता में प्रत्यावर्तन है। इस कारण मनुष्य की यह चेष्टा होनी चाहिये कि वह उससे ऊपर उठे। यदि पति और पत्नी में संभोग करने में यह उच्च उद्देश्य हर समय कायम न रह सके, तो इसे पाप समझने की आवश्यकता नहीं, और न इसमें कोई निन्दा की बात है। इस जगत में लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो रसनातृप्ति के लिये ही खाते हैं, इसी प्रकार लाखों पति तथा पत्नी ऐसे हैं जो शारीरिक आनन्द के लिये संभोग करते हैं, और वे ऐसा करते भी रहेंगे। ऐसे लोग प्रकृति के नियम को तोड़कर चलने के लिये सैकड़ों बीमारियों के शिकार रहेंगे। पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा विवाहित ब्रह्मचर्य के आदर्श उनलोगों के लिये हैं जो आध्यात्मिक

या उच्चतर जीवन के इच्छुक हैं। ऐसा जीवन प्राप्त करने के लिये इस प्रकार का ब्रह्मचर्य धारण आवश्यक है।"

इन उद्धरणों से यह बिलकुल स्पष्ट है कि गांधीजी के मतानुसार संभोग में शारीरिक सुख का कोई स्थान नहीं है। संतानोत्पादन के अतिरिक्त वह सब तरीके से त्याज्य है।

न विवाह हो सकता है, न होना चाहिये। महात्माजी के अन्य मतों को देखते हुए यह बहुत ही मार्के की बात है कि वे प्रेम को विवाह के लिये अपरिहार्य मानने को तैयार थे।

पर वे अपने आधारगत विचार को नहीं छोड़ते। उनके लिए विवाह शारीरिक सुख का साधन नहीं, उनके लिये विवाह का उद्देश्य पुत्रोत्पादन है। उन्होंने इसी विषय का अनुसरण करते हुए ५-६-३५ को 'हरिजन' में लिखा—

"विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की कथा इसका एक बहुत अच्छा प्रमाण है कि केवल संतानोत्पादन के लिये किया हुआ शारीरिक मिलन ब्रह्मचर्य के उच्चतम आदर्श के साथ सामंजस्यहीन है। पर इस सारी कथा को आक्षरिक रूप से लेने की आवश्यकता नहीं। शारीरिक आनन्द के लिये जो संभोग किया जाता है, वह पशुता में प्रत्यावर्तन है। इस कारण मनुष्य की यह चेष्टा होनी चाहिये कि वह इससे ऊपर उठे। यदि पति और पत्नी में संभोग करने में यह उच्च उद्देश्य हर समय कायम न रह सके, तो इसे पाप समझने की आवश्यकता नहीं, और न इसमें कोई निन्दा की बात है। इस जगत में लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो रसनातृप्ति के लिये ही खाते हैं, इसी प्रकार लाखों पति तथा पत्नी ऐसे हैं जो शारीरिक आनन्द के लिये संभोग करते हैं और वे ऐसा करते भी रहेंगे। ऐसे लोग प्रकृति के नियम को तोड़कर चलने के लिये सैकड़ों बीमारियों के शिकार रहेंगे। पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा विवाहित ब्रह्मचर्य के आदर्श उनलोगों के लिये हैं जो आध्यात्मिक

या उदार जीवन के इच्छुक हैं। ऐसा जीवन प्राप्त करने के लिये इस प्रकार का ब्रह्मचर्य धारण आवश्यक है।"

इन उद्धरणों से यह बिलकुल स्पष्ट है कि गांधीजी के मतानुसार संभोग में शारीरिक सुख का कोई स्थान नहीं है। संतानोत्पादन के अतिरिक्त वह सब तरीके से त्याज्य है।

विवाहितों की विभिन्न अद्भुत समस्यायें

गांधीजी के पास हर तरह की समस्याओं के पत्र आते थे। कुछ लोग उनसे पारिवारिक समस्या पर भी सलाह लेते थे। इन पत्रों के उत्तर से उनके मतों का सुन्दर स्पष्टीकरण होता है।

एक युवक ने उनको एक पत्र लिखा जिसका सार यह है—

"मैं एक विवाहित पुरुष हूँ। मैं कार्यवश विदेश चला गया था। मेरे एक मित्र थे जिन पर मेरे तथा मेरे माता-पिता का अविचलित विश्वास था। मेरी अनुपस्थिति में मेरे इस मित्र ने मेरी पत्नी को बहका लिया और अब वह उससे गर्भवती है। मेरे पिता की राय यह है कि मेरी पत्नी अब गर्भपात करावे, नहीं तो परिवार पर लांछन लगेगा। मेरी राय में ऐसा कराना अनुचित होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध हो रही है। वह न खाती है, न पीती है, केवल दिन भर रोती है। क्या आप कृपया बतायेंगे कि इस मामले मे मेरा कर्त्तव्य क्या है ?"

कहना न होगा कि पत्र-लेखक ने महात्माजी के सामने एक ऐसी समस्या रख दी, जो बहुत ही कठिन थी। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी 'जययात्रा' उपन्यास में ऐसी ही एक समस्या रख दी है। पर उसकी समस्या में और इस पत्र-लेखक की समस्या मे एक बड़ा प्रभेद है। 'जययात्रा' की सुरमा हिन्दू-मुस्लिम दंगे में अपनी इच्छा के विरुद्ध एक मुसलमान गुन्डा के द्वारा बलातकृता होकर गर्भवती

होती है, पर पत्रलेखक की स्त्री सामयिक बहकावे में आकर गर्भवती होती है। सुरमा का पति चाहता है कि सुरमा गर्भ गिरा ले, पर रमा ऐसा करना नहीं चाहती। इसी से समस्या जटिल होती है।

पत्र-लेखक की स्त्री के सम्बन्ध में यह जटिलता नहीं है। उसने शायद सम्पूर्ण रूप से अपने को पति तथा ससुर आदि की इच्छा पर छोड़ दिया है। फिर भी प्रश्न बड़ा जटिल है। भ्रूणहत्या नैतिक पाप भी है और अपराध भी। अवश्य छिपाकर करने पर अपराध होते हुए भी कोई डर नहीं है। कुछ भी हो गांधीजी के सामने यह पहेलू नहीं था।

महात्माजी ने पत्र-लेखक का उत्तर देते हुए लिखा—

"मैंने इस पत्र को बड़ी हिचकिचाहट से प्रकाशित किया। जैसा कि सभी जानते हैं कि समाज में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। इसलिये मुझे ऐसा मालूम देता है कि यदि इस विषय में संयत रहकर सार्वजनिक रूप से विचार किया जाय, तो वह अप्रासंगिक न होगा। मुझे यह बिलकुल दिन की रोशनी की तरह स्पष्ट मालूम देता है कि गर्भपात करवाना एक अपराध होगा। इस बेचारी स्त्री ने जो गलती की है, असंख्य पति इसके दोषी होते हैं, पर कोई उनकी तरफ मुँह उठाकर देखता भी नहीं। समाज न केवल उनको दोष देता, बल्कि उनके अपराधों पर परदापोशी करता है। फिर बेचारी स्त्री अपनी लज्जा छिपा नहीं पाती, पर पुरुष मजे में अपना अपराध छिपा लेता है।

"इस प्रसंग में जिस स्त्री का उल्लेख है, वह दया की पात्री है।

पति का यह परम पवित्र कर्त्तव्य है कि वह उस बच्चे का अधिक अधिक लाड़-प्यार से पालन-पोषण करे और पिता के परामर्श मानने से इनकार करे। रहा यह कि वह अपनी स्त्री के साथ रहन जारी रक्खे या नहीं, यह बहुत ही काँटेदार प्रश्न है। परिस्थिति ऐसी हो सकती हैं कि उससे अलग होना पड़े। उस हालत में उसका यह कर्त्तव्य होगा कि वह उसके भरणपोषण तथा शिक्षा की व्यवस्था कर दे, जिससे वह पवित्र जीवन व्यतीत कर सके।

"नहीं, मैं तो इसमें भी कोई बुराई नहीं देखता कि यदि स्त्री अन्तःकरण से पश्चात्ताप करती है, तो उसके पश्चात्ताप को सही मानकर क्यों न ग्रहण किया जाय। मैं तो इससे भी आगे जाता हूँ, और कहता हूँ कि ऐसी परिस्थिति हो सकती है, जब कि पति का यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाय कि वह एक ऐसी बहकी हुई स्त्री को ग्रहण कर ले, जिसने सम्पूर्ण रूप से पश्चात्ताप कर लिया है और जो गलती से तोबा कर चुकी है।

महात्माजी ने इस सम्बन्ध में जो बातें कही हैं, वे बहुत ही विचारणीय हैं। इससे उनकी उदारता ज्ञात होती है। विवाह एक पवित्र बन्धन है, यह उन बन्धनों में से है जिनके बगैर समाज जैसा कि वह अब बना है, जी नहीं सकता। पति और पत्नी दोनों के लिये यह बन्धन मान्य है, पर हमारे पुरुष-प्रधान समाजों में होता यह है कि स्त्री के लिये तो यह बन्धन तथा उसके कर्त्तव्य अपरिहार्य समझे जाते हैं, पर पुरुष के लिए यह बन्धन नाम-मात्र का रहता है।

महात्माजी ने प्रश्न के इस पहेलू पर जोर दिया है। यह तो एक

ाम धात हुई। इस विशेष उदाहरण में पत्नी ने एक बहुत भारी लती की है, जो अक्षम्य है। पुरुष अक्सर ऐसी गलती करते हैं। ह कोई तर्क नहीं है कि स्त्री क्यों ऐसी गलती करे। बजाय खुद सी गलती करने के स्त्री को चाहिए कि वह ऐसी गलती करनेवाले ति से अलग हो जाय। रहा यह कि वर्त्तमान समाज में स्त्री ऐसा र नहीं सकती, करे तो और आफत में पड़े, यह एक खास बात है।

फिर भी महात्माजी ने यह जो लिखा कि स्त्री यदि पश्चात्ताप रती है, तो वह उसे फिर से ग्रहण करे, यह बहुत साहस की बात है। समें यह पता चलता है कि महात्माजी सनातनी नहीं थे जैसा कि ोग उन्हें समझते थे। कोई भी सनातनी इस समस्या का यह माधान नहीं बताएगा।

सबसे बड़ी बात इसमें यह है कि महात्माजी ने किसी भी हालत ं उस धर्म को पालन करने के लिए कहा है, जिसे वह नैतिक दृष्टि से ालन करने के लिए कतई मजबूर नहीं है। केवल यही नहीं स्त्री को ्रलग करने की हालत में भी उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध पति पर डाला गया है। इस सम्बन्ध में स्त्री को जो असुविधायें हैं, उसी के कारण महात्माजी ने ऐसा कहा होगा, क्योंकि व्यभिचार के कारण रित्यक्ता स्त्री के भरणपोषण के लिये पति पर कोई नैतिक मजबूरी नहीं रह जाती। ऐसा बताने में सामाजिक दृष्टि से भी काम लिया गया है। वर्त्तमान समाज में अधिकांश स्त्री अपनी रोजी कमा नहीं सकती, ऐसी हालत में यदि वह, किसी कारण से ही सही, अलग कर दी जाय और उसके भरण-पोषण की व्यवस्था न की जाय,

जो इससे समाज में दुःख तथा पाप बढ़ने की ही संभावना थी
इसलिए यह परामर्श बहुत ही सुन्दर है।

ऊपर जो उदाहरण दिया गया और जिसे केन्द्र बना
आलोचना की गई, उसमें निश्चित रूप से स्त्री ही दोषी थी, पर अक्स
पुरुष दोषी पाये जाते हैं क्योंकि उन्हें मनमानी करने का मौका मि
है। एक तो उन्हें आज़ादी होती है, दूसरा उनके पास पैसे होते
और तीसरा समाज उनके दोषों को कुछ समझता ही नहीं।

एक पत्रलेखक ने गांधीजी को एक पत्र लिखा था, जिसका आश
यों था—

"कुछ समय पहले मेरी बहन का एक व्यक्ति से विवाह हु
जिसके चरित्र के सम्बन्ध में हमें कुछ पता नहीं था। बाद को प
चला कि वह एक लम्पट है और उसकी बदमाशियों की कोई सी
नहीं है। उसमें मर्यादा की कैसी भी कोई भावना नहीं थी
मेरी अभागी बहिन ने यह देखा कि उसका पति देवता दिन प्रतिदि
अवनति के गड्ढे में गिरता चला जा रहा है। इसपर उसने उ
प्रतिवाद किया। उस व्यक्ति से यह सहन नहीं हुआ और उस
मेरी बहन की आँखों के सामने ही सब तरह के दुष्कृत्य किये।

"वह मेरी बहन को अब तक कोड़े भी लगाता है, उसे घंटों ख
रखता है, खाने नहीं देता। उसे खंभे से बाँधकर पति देवता ने ए
बाजारू स्त्री के साथ व्यभिचार किया। मेरी बहन का हृदय टू
चुका है। उसके दुःख को देखकर हमलोग परेशान हैं, पर हम क
क्या सकते हैं? आप उसको तथा हमलोगों को किस बात क

सलाह देंगे ? हिन्दू-धर्म के अत्यन्त लज्जाजनक पहेलुओं में एक यह भी है कि स्त्री को बिलकुल पुरुष की दया पर छोड़ दिया गया है, और उसके न तो कोई अधिकार हैं और न कोई हक हैं।

"यदि कोई पुरुष हृदयहीनता तथा निर्दयता का वर्ताव करे, तो हतभाग्य स्त्री के लिये कोई चारा ही नहीं रह गया। पुरुष चाहे तो जिससे फँसे पर उसपर कोई ऊँगली उठानेवाला नहीं है। पर एक स्त्री की शादी हो गई तो वह सम्पूर्ण रूप से पति की कृपा पर निर्भर है। ऐसी हजारों स्त्रियाँ रो रही हैं तथा कराह रही हैं। जब हिन्दू-धर्म को इन बुराइयों से शुद्ध नहीं किया जाता, तब तक क्या प्रगति की कोई संभावना है ?"

इसमें सन्देह नहीं की इस पत्र का विषय बड़ा करुण है। यदि यह केवल एक विशेष स्त्री की कहानी होती, तो यह उतनी चिन्ता की बात नहीं थी, पर यह कहानी तो हजारों कहानियों में से एक कहानी है। पत्र-लेखक ने इसके लिये हिन्दू-धर्म को दोषी किया था, यह एक हद तक ही सही है, क्योंकि अन्य धर्मावलम्बियों में भी स्त्रियों की हालत इस सम्बन्ध में ऐसी ही पायी जाती है। असली दोष तो समाज व्यवस्था का है जिसमें स्त्री पुरुष के अधीन है।

गांधीजी ने अपने ढंग से लिखा "पत्र-लेखक ने जिस क्रूरता के उदाहरण की तरफ ध्यान दिलाया है, वह हिन्दू-धर्म की त्रुटि का परिचायक नहीं, वह तो मनुष्य स्वभाव की बुराई का द्योतक है और विभिन्न धर्मावलम्बियों तथा सभी देश के निवासियों में पायी जाती है। यदि स्त्री मृदु प्रकृति की है और अपने अधिकारों की रक्षा करना

"मुझे तजुर्बे से यह मालूम है कि अधिकांश क्षेत्रों में यह दवा केवल अनुपयोगी ही नहीं, उससे भी खराब सिद्ध हुई। ऐसी दवा से पति का सुधार असंभव नहीं तो कठिनतर तो अवश्य हो जाता है। और पति का सुधार ही समाज का विशेषकर स्त्री का उद्देश्य होना चाहिये।

"वर्तमान क्षेत्र में लड़की के माता-पिता उसका भली भाँति भरण-पोषण करने में समर्थ हैं, पर जिस क्षेत्र में ऐसा संभव न हो, उस जरूरत के लिये देश में संस्थाओं की संख्या बढ़ रही है।

"अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब तलाक नहीं हो सकता, और स्त्री पति का घर छोड़ दे, या पति ही स्त्री का परित्याग कर दे, तो उनकी कामेच्छा की तृप्ति कैसे हो। पर संख्या की दृष्टि से देखते हुए यह समस्या कुछ बहुत टेढ़ी नहीं है क्योंकि हमारे समाज में युगों से तलाक नहीं रहा, इस कारण जिस स्त्री का विवाह असुखी हो जाता है, वह पुनर्विवाह करना नहीं चाहती। जब किसी समाज में जनमत उस विशेष परितृप्ति का तकाजा करेगा, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि परितृप्ति का समाजिक रास्ता निकल आयेगा।

"जहाँ तक मैंने पत्र-लेखक का मतलब समझा है, उनकी यह शिकायत नहीं है कि लड़की की यौन तृप्ति का मार्ग रुद्ध है। उनकी शिकायत यह है कि पति चुनौती देकर इस तरह दुर्नीतिपूर्ण आचरण करता है। इसके लिये जैसा कि मैंने कहा अपना मानसिक रूख ही बदल दिया जाय। असहायता की भावना काल्पनिक है जैसा कि हमारे बहुत से कष्ट हैं। × × × केवल उस स्त्री को अत्याचार

"मुझे तजुर्बे से यह मालूम है कि अधिकांश क्षेत्रों में यह दवा केवल अनुपयोगी ही नहीं, उससे भी खराब सिद्ध हुई। ऐसी दवा से पति का सुधार असंभव नहीं तो कठिनतर तो अवश्य हो जाता है। और पति का सुधार ही समाज का विशेषकर स्त्री का उद्देश्य होना चाहिये।

"वर्तमान क्षेत्र में लड़की के माता-पिता उसका भली भाँति भरण-पोषण करने में समर्थ हैं, पर जिस क्षेत्र में ऐसा संभव न हो, उस जरूरत के लिये देश में संस्थाओं की संख्या बढ़ रही है।

"अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब तलाक नहीं हो सकता, और स्त्री पति का घर छोड़ दे, या पति ही स्त्री का परित्याग कर दे, तो उनकी कामेच्छा की तृप्ति कैसे हो। पर संख्या की दृष्टि से देखते हुए यह समस्या कुछ बहुत टेढ़ी नहीं है क्योंकि हमारे समाज में युगों से तलाक नहीं रहा, इस कारण जिस स्त्री का विवाह असुखी हो जाता है, वह पुनर्विवाह करना नहीं चाहती। जब किसी समाज में जनमत इस विशेष परितृप्ति का तकाज़ा करेगा, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि परितृप्ति का सामाजिक रास्ता निकल आयेगा।

"जहाँ तक मैंने पत्र-लेखक का मतलब समझा है, उनकी यह शिकायत नहीं है कि लड़की की यौन तृप्ति का मार्ग रुद्ध है। उनकी शिकायत यह है कि पति चुनौती देकर इस तरह दुर्नीतिपूर्ण आचरण करता है। इसके लिये जैसा कि मैंने कहा अपना मानसिक रूख ही बदल दिया जाय। असहायता की भावना काल्पनिक है जैसा कि हमारे बहुत से कष्ट हैं। ××× केवल उस स्त्री को अत्याचार

के केन्द्र से हटा लेने से ही कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। उसे सामाजिक सेवा की शिक्षा भी देनी चाहिये। इससे पति की शय्या के सन्देहजनक सुख की क्षति-पूर्ति से कहीं अधिक सुख प्राप्त होगा।"

इस प्रकार महात्माजी स्पष्ट रूप से तलाक की सिफारिश न करने पर भी यह स्पष्ट है कि वे तलाक में एक तो कोई अनैतिक बात नहीं देखते और दूसरा पुनर्विवाह के विरुद्ध उन्हें कुछ कहना नहीं है। -

पतियों के द्वारा स्त्रियों का निर्यातन एक आम बात है। स्त्री भी पति की उसी प्रकार की सम्पत्ति समझी जाती है जैसे ढोर हो। सबसे मजेदार बात यह है कि मदुरा के एक जज ने यह फैसला दे दिया कि पति को स्त्री पर मारपीट करने का अधिकार है। खैरियत यह है कि जब यह मामला हाईकोर्ट में गया तो वहाँ के जजों ने सेशन जज की बात का मजाक उड़ाया।

उनलोगों ने लिखा "विद्वान सेशन जज के अपने फैसले में कई बार यह लिखा है कि पति को निर्लज्जता तथा गुस्ताखी के लिये स्त्री पर मारपीट करने का अधिकार है, इसीसे यह मुकद्दमा हमलोगों के सामने आया। विद्वान सेशन जज के दिमाग में पति द्वारा स्त्री के मारे जाने का अधिकार इतना बसा हुआ था कि उन्होंने पुलिस की इसलिये खबर ली कि उसने पति के विरुद्ध स्त्री को मारने का अभियोग क्यों रक्खा।

"इस सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि विद्वान सेशन जज साहब को यह अख्तियार है कि वे अपनी वैयक्तिक हैसियत में इस विषय में अपने विचार रख सकते हैं, पर इस प्रकार से जजी के

शासन मे यह कानून बनाना कि पति को यह अधिकार है कि स्त्री को निर्लज्जता के लिये या गुस्ताखी के लिये मारे, अनुचित था। ताजीरात हिन्द मे ऐसे किसी अधिकार को स्वीकार नहीं किया गया जो 'साधारण अपवाद' गिनाये गये हैं, उनमे स्त्री पर मारपीट नहीं गिनाया गया है।"

हाईकोर्ट के जजों ने बहुत ही साफ शब्दों मे इस कथित अधिकार के अस्तित्व का विरोध किया। महात्माजी ने इस पर लिखा—

"हमें लज्जा के साथ इसे स्वीकार करना पड़ता है कि शिक्षित पति भी इस विश्वास से मुक्त नहीं हैं कि वे स्त्रियों के साथ ऐसे व्यवहार कर सकते हैं मानो वह कोई स्थावर सम्पत्ति हो, और जब उनकी खुशी हो तो उन्हें मारें। इस फैसले से उन्हें यह मालूम हो जाय कि यह वर्बर युग का बचा रिवाज है तो अच्छा हो।"

महात्माजी का ध्यान अनमेल विवाह की ओर भी आकर्षित किया गया। एक नौजवान ने उनको लिखा—

"मेरी उम्र १५ है। मेरी स्त्री की उम्र १७ है। अब मैं बड़ी आफत में हूँ। मैं बराबर इस अनमेल विवाह के विरुद्ध था, पर मेरे पिता तथा चाचा ने मेरे प्रतिवाद पर ध्यान देने के बजाय मुझ पर बिगड़े और लगे मुझे बुरा-भला कहने। कन्या के पिता ने धनी घराने में शादी करने के ख्याल से अपनी लड़की की शादी मेरे साथ कर दी, यद्यपि उस समय मैं और भी कम उम्र का था। यह कितनी मूर्खता की बात है? मेरे पिता मुझे इस प्रकार गड्ढे मे डालने के बजाय मुझे चुपचाप क्यों न छोड़ सके। यदि मैं उस समय इस

सभी मानेंगे कि व्यक्ति को यह अधिकार है कि समाज के सामने अपनी दिक्कतों को पेश करे, फैसला करना तो समाज के ही हाथों में हो। पर यदि समाज प्रस्तरीभूत तथा लकीर का फकीर हो गया हो, उसमें कुछ गति ही न रह गई हो तो ?

ऐसे वक्तों के लिये ही गांधीजी ने ऊपर की सलाह दी है। ऐसे समय सामाजिक रूढ़ियों को वालाये ताक रखकर क्रान्तिकारी विचार के व्यक्ति को अपना मार्ग बना लेना पड़ता है।

अब तक जिस तरह की समस्यायें ली गईं, उनसे उच्चतर सतह पर एक समस्या ली जाती है। एक पत्र-लेखक ने गांधीजी को लिखा—

"मेरा विवाह हो चुका है। मेरी पत्नी सुशील स्त्री है। हमारे बच्चे भी हैं। हम अब तक शान्ति में रहे हैं। दुर्भाग्य से उसे कोई ऐसा मिल गयी जिसे उसने गुरु बना लिया। जब से उसने गुरुमंत्र ले लिया, तब से वह हमारे लिये एक बन्द पिटारी हो गई। इससे हमलोगों के सम्बन्ध में एक ठंडापन-सा आ गया। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं करूँ तो क्या करूँ। तुलसीदास के राम मेरे आदर्श हैं। क्या मैं राम की तरह अपनी स्त्री से सम्बन्ध विच्छेद कर लूँ ?"

कहना न होगा कि यह बड़ी टेढ़ी समस्या थी। समस्या टेढ़ी इसलिये थी कि पता ही नहीं लग रहा था कि समस्या कहाँ और किस बात में है। गुरु कौन थी, उसने क्या कहा ? उसका क्या उद्देश्य था ? स्पष्ट बुद्धि से यह समझ में आता था कि जो भी बात इतने दिनों

से शान्ति तथा सुख से रहनेवाली जोड़ी में बिलगाव पैदा कर दे, उसे संदिग्ध ही कहा जा सकता था। पर पति ने यह भी लिखा कि स्त्री अच्छी है। साथ ही उसने जो प्रस्ताव रक्खा था कि वह स्त्री का परित्याग कर दे, इससे यह भी स्पष्ट था कि वह बहुत परेशान है। इसी कारण मैंने कहा कि समस्या कई दृष्टि से गंभीर बड़ी है।

गांधीजी ने इसका क्या उत्तर दिया यह देखने की बात है—

"तुलसीदास ने इस बात की शिक्षा दी है कि हम बिना समझे-बूझे बड़ों का अन्धाधुन्ध अनुकरण नहीं कर सकते। वे जिस बात को बिना कोई हानि उठाये कर सकते हैं, हम उसे वैसे नहीं कर सकते। सीता के लिये राम के प्रेम की बात को सोचो। तुलसीदास का कथन है कि स्वर्ण हरिण के आविर्भाव के पहले असली सीता बादलों में अन्तर्हित हो गई और केवल छाया रह गई। लक्ष्मण को भी यह रहस्य ज्ञात नहीं था। कवि ने यह भी बताया है कि राम का उद्देश्य दिव्य था। स्वर्ण हरिण के चले जाने के बाद सारी लीला इसी सीता को लेकर हुआ था। फिर सीता को राम का कोई कार्य अप्रिय नहीं था।

"पर किसी पार्थिव मामले में ये सब चमत्कार कहाँ हैं। इस कारण तुमको मेरी यह सलाह है कि अपनी पत्नी के साथ सद्व्यवहार करो, और उसके किसी कार्य में तब तक कोई हस्तक्षेप न करो जब तक उसके चरित्र के सम्बन्ध में तुम्हें कोई शिकायत न हो। यदि तुमने किसी को गुरु बनाया होता और तुम अपनी पत्नी से इस बात को छिपाते तो क्या तुम्हारी पत्नी को इस कारण तुम से शिकायत होनी

अन्तिम वाक्यों से यह स्पष्ट है कि गार्हस्थ्य विद्रोह उच्छृंखलता का नामान्तर नहीं, वह तो सामाजिक सन्तुलन को ठीक करने का एक साधन है, न कि उसे बिगाड़ने का। किसी भी हालत में पत्नी को या पति को यह अधिकार नहीं है कि वे विद्रोह के नाम पर असामाजिक, प्रतिसामाजिक या उच्छृंखल व्यवहार करें।

जन्मनिरोध का विरोध

महात्माजी के जीवन से ही पता है कि विवाहित व्यक्तियों के लिये आदर्श अवस्था विवाहित ब्रह्मचर्य को समझते थे। एक शब्द में बता दिया जाय कि वे सम्पूर्ण रूप से जन्मनिरोध के तरीकों के विरुद्ध थे। जिनलोगों को पता नहीं है, उनकी जानकारी के लिये यह बता दिया जाय कि जन्मनिरोध में वे सारे तरीके आ जाते हैं, जिनके द्वारा पति-पत्नी में संभोग को जारी रखते हुए भी गर्भनिरोध किया जाता है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि गर्भपात और गर्भनिरोध एक ही बात है, पर यह बात नहीं। गर्भनिरोध में गर्भ रहने से पहले ही कार्रवाई कर दी जाती है। गर्भनिरोध को कई लोग केवल व्यक्ति की दृष्टि से ही कल्याणकारी नहीं, समाज की दृष्टि से भी उचित समझते हैं।

संभोग की इच्छा को एक स्वाभाविक इच्छा बतलाया गया है और यह कहा गया है कि प्रत्येक बार तभी संभोग किया जाय जब संतान की इच्छा हो, यह धारणा ठीक नहीं। महात्माजी का तो यही मत था कि संभोग का केवल एक ही उद्देश्य है सन्तानोत्पादन।

बहुत से मित्रों को महात्माजी का यह मत कतई पसन्द नहीं था, इस कारण उन्होंने उनके साथ तर्क-वितर्क किया। इन्हीं लोगों के कहने पर मजबूर होकर महात्माजी ने इस विषयक कुछ साहित्य पढ़ा।

का क्या कहना है। उनका अध्ययन फ्रांस तक केन्द्रित है, पर फ्रांस का अर्थ बहुत कुछ है। यह दुनिया के सभ्यतम देशों में समझा जाता है और यदि वे तरीके फ्रान्स में सफल नहीं रहे हैं, तो वे कहीं भी सफल होंगे ऐसी संभावना नहीं है।"

अब गांधीजी ने यहाँ पर सफल न होने का क्या अर्थ है, इस पर मत व्यक्त किया है। "यह समझना चाहिये कि ये तरीके असफल रहे हैं, यदि यह दिखाया जा सके कि नैतिक बन्धन ढीले हो गये हैं, कामुकता बढ़ी है, तथा इन तरीकों को स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टि से परिवार को सीमित रखने के बजाय इनका प्रयोग पाशविक वृत्तियों को चरितार्थ करने के लिये किया गया है।"

गांधीजी ने असफलता की यह व्याख्या देते हुए यह बताया है कि इससे भी कड़ी व्याख्या हो सकती है। इस व्याख्या के अनुसार पुरुष तथा स्त्री को तब तक संगम की इच्छा करनी ही नहीं चाहिये, जब तक कि वे बच्चे की नीयत न रक्खें।

मोशिये ब्युरो ने जो तथ्य एकत्रित किये हैं, वे यह दिखलाते हैं कि फ्रान्स में इन तरीकों के प्रचार के बावजूद फ्रान्स में अपराधजनक गर्भपातों की संख्यायें नहीं घटी हैं। मोशिये ब्युरो ने लिखा है "अपराधजनक गर्भपातों के बाद ही शिशुहत्या, अगम्यगमन तथा ऐसे अपराध आते हैं जिनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। प्रथम अपराध के बारे में सिवा इसके कुछ नहीं कहना है कि जन्मनिरोध के सब उपायों के प्रचार तथा अविवाहित माता को सब तरह की सुविधायें दी जाने पर भी इसका प्रचार है।"

के कारण व्यभिचार का बाजार गर्म रहता है कि इसके परिणाम स्वरूप कानूनी रूप से विच्छेद तथा तलाक होते हैं। इस स्थान पर अपने तथ्यों तथा आंकड़ो को बल पहुँचाने के इरादे से उक्त फ्रेञ्च लेखक ने एक विवाह-विरोधी लेखक की कृति से यह उद्धरण दिया है—

"मेरी समझ के अनुसार विवाह से बढ़कर कोई बर्बर प्रथा नहीं हो सकती। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि मानवजाति न्याय तथा बुद्धि की तरफ कोई प्रगति करे तो वह इस प्रथा से छुटकारा प्राप्त कर लेगी। पर पुरुष इतने भद्दे तथा स्त्रियाँ इतनी कायर हैं कि प्रचलित नियम से किसी उच्चतर नियम की माँग कर नहीं सकती हैं।"

इस प्रकार मोशिये ब्युरो ने सब प्रकार से अवान्तर विषयो की अवतारणा कर अपनी बात प्रमाणित करने की चेष्टा की थी। उनकी एक शिकायत यह भी थी कि लोग जन्मनिरोध करते हैं, इस कारण फ्रान्स की जनसंख्या भी घटती जा रही है।

मैंने मोशिये ब्युरो को बहुत बोलने दिया। पर यहां यह बता देना आवश्यक है कि जन्मनिरोध का उद्देश्य तथा जन्मनिरोध आन्दोलन का उद्देश्य हर्गिज यह नहीं है कि विवाह प्रथा का त्याग कर दिया जाय, या उसके जरिये से व्यभिचार का प्रसार हो। जन्मनिरोध आन्दोलन का केवल इतना ही उद्देश्य है कि विवाहित लोग इच्छानुसार सन्तानों की संख्या का नियंत्रण कर सके।

रहा इसके उपायों का दुरुपयोग, सो कौन-सी ऐसी बात है जिसका दुरुपयोग नहीं होता। जन्मनिरोध के उपायों के कारण व्यभिचार में वृद्धि हुई है, यह बिलकुल कपोल-कल्पना है। कोई

व्यभिचारी इस कारण रुका नहीं रहता था कि वह जन्मनिरोध नहीं कर सकता।

फिर इस सम्बन्ध में सब से बड़ी बात यह है कि जब ये वैज्ञानिक उपाय आविष्कृत नहीं हुए थे, तब भी कुछ न कुछ जन्मनिरोध के उपाय थे ही। पादरी एलविन गोंड आदि जातियों में भी इन उपायों को पाया है। वेश्याओं में भी इस प्रकार की कुछ न कुछ कला का प्रसार है। अवश्य अक्सर क्षेत्रों में जन्मनिरोध न कर गर्भ रहते ही फौरन उसको नष्ट कर दिया जाता था।

यहाँ पर यह साफ कर दिया जाय कि जन्मनिरोध के साथ गर्भपात का कोई सम्बन्ध नहीं है। जन्मनिरोध का उद्देश्य गर्भ न रहने देना है। याने गर्भ रहने के पहले ही वह अपनी कार्रवाई कर देता है। पुरुष वस्तु (spermatozoon) के द्वारा स्त्री वस्तु (ovum) के उर्वरीकरण से गर्भ रहता है। यदि इस उर्वरीकरण प्रक्रिया को रोक दिया जाय, चाहे यह किसी भी प्रकार किया जाय, दवा से किया जाय, रबर आदि से किया जाय, या शल्य विद्या की प्रक्रिया से किया जाय, तो इसे जन्मनिरोध कहेंगे।

पर यदि यह उर्वरीकरण की प्रक्रिया हो चुकी है और इसके हुए केवल एक घंटा हो चुका है, फिर इसे नष्ट कर दिया जाय तो वह गर्भपात की श्रेणी मे आ जाता। पुरानी बुढ़ियों को जन्मनिरोध के तो कम आते हैं, पर ताजे गर्भ को गिरा देनेवाले सैकड़ों उपाय मालूम है। जीवविज्ञान तथा अपराध और शस्तिविज्ञान के ... गर्भ रहते ही उसमें प्राणसंचार हो गया और उसको नष्ट

करना जीव-हत्या की श्रेणी में आ जाता है। इसलिये इससे तो कहीं अच्छा यह है कि जीव की सृष्टि होने के पहले ही कार्रवाई कर दी जाय।

ऊपर संक्षेप में जन्मनिरोध का दायरा तथा उद्देश्य का वर्णन किया गया, पर दुःख है कि इनको भुलाकर मोशिये-ब्युरो ने अन्य ऐसे प्रश्नों को उठाया है जिनसे जन्मनिरोध का उतना ही सम्बन्ध है जितना बादाम से हैजे का है।

मोशिये ब्युरो ने इस विषय पर भी विस्तार के साथ कई उद्धरण दिये हैं जिनमें यह कहा गया है कि ब्रह्मचर्य बहुत सरल है, कामेच्छा की तृप्ति आवश्यक नहीं इत्यादि। गांधीजी को ये उद्धरण बड़े प्रिय थे, इसलिये यहाँ उनमें से कुछ उद्धृत किये जाते हैं।

ट्युबिंगेन विश्वविद्यालय के अध्यापक एस्टेरलेन का कहना है—"काम-वासना इतनी अन्धरूप से सर्वशक्तिमान नहीं है कि उसे नियंत्रित न किया जा सके, सच तो यह है कि नैतिक बल तथा बुद्धि में इसको सम्पूर्ण रूप से दबा दिया जा सकता है। युवकों को युवतियों की तरह ठीक समय तक संयत रहना चाहिये। उन्हें यह जानना चाहिये कि इस स्वेच्छाकृत त्याग कर पुरस्कार तगड़ा स्वास्थ्य तथा शक्ति होगी।"

स्विस मनोवैज्ञानिक फोरेल का कहना है "अभ्यास करने पर प्रत्येक प्रकार की स्नायविक कर्मशक्ति बढ़ती है। इसके विपरीत यदि किसी खास क्षेत्र में काम न लिया जाय, तो उस क्षेत्र में उत्तेजना की कमी हो जाती है।" फोरेल के वक्तव्य को यह समझकर उद्धृत किया

गया है कि कामुकता की तृप्ति से ही कामुकता की वृद्धि होती है, पर उनके कथन का अर्थ यह है कि कामांगों से काम लेने पर रतिशक्ति बढ़ती है, अन्यथा उनकी शक्ति घटती है, उनमें उत्तेजना कम होती है। एक हद के बाद उन अंगों की हालत उर्ध्ववाहु साधुओं के हाथ की तरह हो सकती है कि वे बिलकुल ही निर्जीव हो जायें। पर इसके अलावा एक परिणाम होता है, जो फोरेल के इस उद्धरण में नहीं है। वह यह कि यदि उदात्तीकरण (sublimation) में पूरी सफलता नहीं मिलती तो कामवासना का दमन कई अन्य तरीके से फूट सकता है।

डाक्टर ऐक्टन का कथन है, युवकों तथा युवतियों को चाहिये कि विवाह के पहले तक सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें। ब्रह्मचर्य से न आत्मा को हानि है, न शरीर को।"

यहाँ यह बता दिया जाय कि जन्मनिरोध आन्दोलन का न तो यह वक्तव्य है और न यह उद्देश्य है कि लोग विवाह के पहले काम परितृप्ति करें, बल्कि इसका कोई भी प्रतिपादक यह कहेगा कि यह तो होना ही चाहिये। जन्मनिरोध आन्दोलन को इस रूप में पेश करना कि वह किसी भी हालत में व्यभिचार का पृष्ठपोषण करता है, ... प्रथा के विरुद्ध है गलत प्रचार करना है।

और उद्धरणों को देने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि गांधीजी ने कई इसी ढंग के उद्धरण दिये हैं। इस ढंग के तर्कों से स्पष्ट हो जाता है कि इसपर जहाँ पर हमला करने से कुछ काम था, वहाँ पर कोई हमला इन उद्धरणों में नहीं किया गया ...की बातें अधिक की गईं।

जन्मनिरोध के आधारगत तथ्यों को यों प्रश्न रूप में रक्खा जा सकता है—

(१) क्या सन्तान होना, न होना, विशेषकर उसका नियंत्रण सम्पूर्ण रूप से आकस्मिकता पर छोड़ा जाय ?

(२) क्या गरीबी तथा स्वास्थ्य, विशेषकर माता के स्वास्थ्य की दृष्टि से सन्तानों की संख्या का नियमन तथा नियत्रण जरूरी नहीं है ?

(३) क्या सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का आदर्श पति-पत्नी के लिए एक ही हद तक ही संभव नहीं है ?

(४) क्या ऐसे उपाय संभव हैं जिनके प्रयोग से संभोग सुख तो ज्यों का त्यों बना रहे, पर सन्ततिनिरोध हो जाय ?

इन प्रश्नों तक अपनी आलोचना को सीमित रखने के बजाय न मालूम कहाँ-कहाँ की कौड़ी लाकर क्या-क्या प्रमाणित किया गया है। सिवा उन बातों के जिन बातों के प्रमाणित करने से कुछ बनता सभी बातें प्रमाणित की गई हैं। जन्मनिरोध आन्दोलन का कौन-सा प्रतिपादक यह कहता है कि विवाह के पहले या बाद को व्यभिचार करना चाहिये ?

यदि कोई ऐसा कहता है तो अवश्य ही वह दृष्य है। जन्मनिरोध के प्रतिपादक तो जहाँ तक निभ सके विवाहित ब्रह्मचर्य का भी समर्थन करेंगे क्योंकि ऐसा करना तो स्वास्थ्य तथा संभोग दोनों की दृष्टि से हितकर है। जन्मनिरोध का उद्देश्य यह नहीं कि दुःख तथा अपराध में वृद्धि हो, बल्कि इसका घोषित उद्देश्य ठीक इसके विपरीत है। रहा यह कि लोग जन्मनिरोध का दुरुपयोग करते हैं या कर सकते हैं,

महात्माजी मोशिये ब्युरो के सब मतों को कुछ-कुछ उद्धृत करने के बाद कहते हैं कि फ्रांस और भारत की अवस्था एक नहीं है। "भारतवर्ष मे जन्मनिरोध के साधनों का प्रयोग आम नहीं है। शिक्षित वर्गों में भी इनका प्रवेश बहुत ही कम है। मेरी राय में यहाँ एक भी बात ऐसी नहीं है जिसके कारण इनका प्रयोग उचित समझा जाय।"

फिर वे ब्यौरे में जाते हुए पूछते हैं "क्या मध्यवित्त वर्गों के लोगों को बहुत अधिक बच्चे हो रहे हैं, इतने कि वे इस कारण पीड़ित हैं। एक आध उदाहरण से मध्यवित्त वर्ग में बहुत ही अधिक बच्चे होते हैं यह प्रमाणित नहीं होता। मैंने भारतवर्ष में जहाँ भी इन साधनों के प्रयोग की बात सुनी है, वे विधवायें और कम उम्र स्त्रियां ही थीं। इस प्रकार एक क्षेत्र मे उनका प्रयोग इसलिये होता था कि अवैध सन्तानोत्पत्ति को रोका जाय, न कि गुप्त प्रणय। दूसरे क्षेत्र मे उनका प्रयोग इस कारण होता है कि गर्भ को रोका जाय, पर कम उम्र बालिका पर बलात्कार जारी रहता है।"

दुःख का विषय में कि गांधीजी की दृष्टि ऐसे ही क्षेत्रों के प्रति आकर्षित को गई, जिनमें जन्मनिरोध के पवित्र साधनों का दुरुपयोग होता था। यह मानवता के लिये बहुत दुर्भाग्य की बात हुई, क्योंकि उनका मत इसी आधार पर बना, और उन्होंने कसकर आमरण इन ... का विरोध किया। भला जिन साधनों के कारण व्यभिचार ... आशंका थी, वे गांधीजी का आशीर्वाद कैसे प्राप्त कर

बाकी जो लोग इन साधनों का प्रयोग करते हैं, उनके सम्बन्ध में भी महात्माजी के विचार कुछ अच्छे नहीं थे। वे कहते हैं "अब ऐसी एक श्रेणी के लोगों की बात रह गई जो बीमार, कमजोर, स्त्री-भावापन्न हैं, जो अपनी स्त्री या दूसरों की स्त्री के साथ यथेच्छाचार करते हैं, और उसके परिणाम से बचना चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि भारतवर्ष मे ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी है, और दाल मे नमक के बराबर भी नहीं है जो पूर्ण यौवन मे हैं, संभोग करना चाहते हैं, साथ ही बच्चे नहीं चाहते। उनको यह चाहिये कि अपनी बात का हवाला देकर एक ऐसे साधन का भारत मे प्रसार न करें क्योंकि यदि इसका भारत मे प्रचार हो गया तो यहां के नौजवानों का सत्यानाश हो जायगा।"

"अत्यन्त कृत्रिम शिक्षा के कारण जाति के नौजवान मानसिक तथा शारीरिक तेज से वंचित हो चुके हैं। स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमों के पालन न करने के कारण जाति के युवक शारीरिक तथा मानसिक कर्मशक्ति से वंचित हो चुके हैं। हमलोगों की गलत तथा त्रुटियुक्त खाद्य तथा पाक-प्रणाली ने जिसमें गरम-मसालों का आत्यंतिक प्रयोग होता है हाजमे का सत्यानाश कर दिया है।

"हमें जिस बात की आवश्यकता है, वह यह नहीं है कि हमें जन्मनिरोध की शिक्षा दी जाय जो हमारी पाशविक प्रवृत्ति के चरितार्थ करने में सहायक हो, बल्कि हमें निरन्तर यह शिक्षा मिलनी चाहिये कि हम इससे बचें, कई क्षेत्रों में तो यह शिक्षा देनी है कि हम इससे पूर्ण रूप से बचें। हमें उपदेश तथा उदाहरण से यह शिक्षा देनी

चाहिये कि यदि हमें मानसिक तथा शारीरिक रूप से पंगु नहीं बनाना हो तो ब्रह्मचर्य बिलकुल संभव है, केवल यही नहीं, यह जरूरी भी है। हमें चिल्ला-चिल्लाकर इस बात की शिक्षा देनी है कि यदि हमें कठपुतलियों की जाति नहीं बननी है, तो हमें चाहिये कि जो थोड़ी बहुत कर्मशक्ति हममे है, हम उसकी रक्षा तथा सचय करें।

हमें अपनी बालविधवाओं से यह कहना है कि वे गुप्त रूप से पाप न करें, बल्कि खुलकर समाज के सामने विवाह की मांग करें, जो उनका उसी प्रकार से हक है जैसे विधुरों का हक है। हम जनमत को इस प्रकार तगड़ा बनावें कि बाल-विवाह हो ही नहीं सकें।

"यदि हम यह विश्वास करना शुरू करें कि पाशविक वृत्ति को चरितार्थ करना जरूरी, अहानिकर तथा पापहीन है, तो फिर हम उसे खुला लगाम देना शुरू करेंगे। फिर तो हम इसके विरुद्ध प्रतिरोध करने में असमर्थ हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि हम अपने को इस प्रकार शिक्षित करें कि हम विश्वास करने लगें कि पाशविक वृत्ति को चरितार्थ करना हानिकर, अनावश्यक तथा पापात्मक है, तो हमारे लिये संयम आसान हो जायगा। पाश्चात्य हमे नया सत्य तथा कथित मानवीय स्वतंत्रता के नाम से स्वेच्छाचार की जो शराब भेजता है, हम उसके विरुद्ध होशियार रहें। इसके विरुद्ध हम पाश्चात्य की उस गंभीर आवाज को सुनें, जो वहां के ज्ञानियों की वाणी के जरिये हम तक कभी-कभी पहुँचती है।"

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है पर सत्य है कि गांधीजी के हाथों में जाकर यह समस्या पाश्चात्य बनाम प्राच्य की समस्या बन गई

यह और भी आश्चर्यजनक इस कारण है कि पाश्चात्य के सभी धर्मनेता तथा ईसा, पिटर, पाल, एक्वीनास तथा दार्शनिक जैसे अफलातून, अरस्तू, स्पिनोजा, देसकार्ते, कैन्ट, हेगेल, शोपेन हावेर आदि अध्यात्मवादी इस कारण संयमवादी थे। अवश्य इस प्रकार एक प्रश्न को ख्वामख्वाह पाश्चात्य बनाम प्राच्य कर देने से कुछ लोगों को जल्दी असर में लाया जा सकता था, पर इससे सत्य के निर्णय में मदद नहीं मिलती। अस्तु।

श्री चार्लस एन्ड्रूज ने इन्हीं दिनों गांधीजी के पास Open court में प्रकाशित विलियम लाफ्स का एक लेख भेजा, जिसका शीर्षक था Generation and regeneration. यह लेख वैज्ञानिक ढंग पर लिखा हुआ था। इसमें लेखक ने इस मत का प्रतिपादन किया था कि शरीर के अन्दर दो प्रक्रियायें चलती रहती हैं, एक तो शरीर निर्माणार्थ आन्तरिक वृद्धि और दूसरी उस प्राणी जाति को बचाये रखने के लिये प्रजनन की क्रिया।

लेखक ने यह दिखलाया था कि शरीर निर्माणवाली प्रक्रिया तो व्यक्ति के लिये अपरिहार्य इस कारण मुख्य है, पर दूसरी प्रक्रिया तो तभी होती है, जब शरीर के अन्दर कोषों की अधिकता हो जाय, इस कारण गौण है। लेखक का कहना था कि प्रथम प्रक्रिया तो जीवन के लिये आवश्यक है, पर दूसरी प्रक्रिया एक हद के अन्दर ही चल सकती है। वे कहते हैं "सभ्य लोगों में पीढ़ी चलाने के लिये जितना संभोग जरूरी है, उससे कहीं अधिक संभोग किया जाता है और यह शरीर निर्माण प्रक्रिया के दामों पर होता है जिससे रोग, अकालमृत्यु तथा अन्यान्य बातें पैदा हो जाती हैं।"

। जायगा जो जनमत के द्वारा लादे जाते हैं। कृत्रिम उपायों के योग से क्षीणता तथा स्नायविक शिथिलता बढ़ेगी। अपने कार्यों के रिणामों से बचने की चेष्टा करना गलत और अनैतिक है।"

पर यहाँ केवल खुद बचने का प्रश्न नहीं है। यदि माता-पिता ोगी हैं, साधनहीन हैं, बच्चों को पौष्टिक खाद्य नहीं दे सकते, शिक्षा नहीं दे सकते फिर भी बच्चे पैदा करते हैं, तो उनको शारीरिक, मानसिक जो कुछ कष्ट होगा, यदि गांधीजी उनको उनसे बचाना नहीं चाहते, तो न बचावें, पर बच्चों का क्या दोष है ? मैं समझती हूँ कि बच्चे हों या न हों, यह एक सुविधा-असुविधा का विशेषकर वैयक्तिक एवं सामाजिक सुविधा-असुविधा का प्रश्न है, इसमें काल्पनिक नैतिक मूल्यों को मिलाना विचार विभ्रम ही पैदा कर सकता है।

यह मानना बिल्कुल मुश्किल मालूम देता है कि व्यक्ति और समाज के परे कोई नैतिक मूल्य है। भिखमंगों, रोगियों तथा अपाहिजों को पैदा करते जाना कभी नैतिक नहीं हो सकता। गांधीजी का यह तर्क कि मनुष्य के लिये अपने कार्य के परिणामों से बचना गलत है कुछ जमता नहीं। स्मरण रहे कि परिणाम से गांधीजी का मतलब आदिमकाल में जो परिणाम होता था, वही है।

पर सारी सभ्यता की केन्द्रीय बात ऐसे मनुष्य के लिये प्रतिकूल परिणामों से बचना है। ऊँचाई से गिरना माने हड्डी चूर करना है, पर पैराशूटवाले आसमान से जमीन पर उतर आते हैं। ऐसे अवसर के लिये कोई यह कहे कि पैराशूट का व्यवहार अनैतिक है, तो यह

गांधीजी ने इस पर टीका करते हुए लिखा "संभोग-क्रिया अनिवार्य रूप से एक Katabolic याने मृत्यु-अभिमुखी क्रिया है विलियम लाफ्स ने यह साफ लिखा है कि ब्रह्मचारी या करीब-करी ब्रह्मचारी व्यक्ति में पुरुषत्व, जीवनीशक्ति तथा रोगों से मुि होती है।

कहना न होगा कि ये बातें बहुत कुछ एकदेशीय हैं। यह किस भी तरह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि विवाहित व्यक्तियों अविवाहित व्यक्ति विद्या, बुद्धि, मेधा, प्रतिभा, त्याग यहाँ तक शारीरिक बल में अधिक होते हैं। दुनिया का कोई भी बड़ा का ब्रह्मचारियों के द्वारा नहीं हुआ। यदि कोई व्यक्ति ब्रह्मचारी रह चाहे रहे, पर यहाँ तो सामूहिक रूप से बात हो रही है।

फिर जिस विषय पर यहाँ विचार हो रहा है, उसका प्रतिपाद्य कदापि नहीं है कि लोग ब्रह्मचारी न रहें, या लोग व्यभिचारी जायँ। जन्मनिरोध का प्रतिपाद्य केवल इतना ही है कि जो प पत्नी संभोग करते हुए सन्तान-प्रजनन से बचना चाहते हैं, वे सकते हैं। इस सम्बन्ध में दूसरे अवान्तर प्रश्नों का उठा ही गलत है।

अब देखा जाय कि स्वयं जन्मनिरोध के विषय में ब्यौरे में वक्तव्य क्या है। वे कहते हैं—

"कृत्रिम उपायों का प्रयोग मानो पाप को प्रोत्साहन देना है। पुरुष और स्त्री दोनों लापरवाह होकर चलते हैं। को भद्र स्वीकृति दी जा रही है, इससे

हो जायगा जो जनमत के द्वारा लादे जाते हैं। कृत्रिम उपायों के प्रयोग से क्लीवता तथा स्नायविक शिथिलता बढ़ेगी। अपने कार्यों के परिणामों से बचने की चेष्टा करना गलत और अनैतिक है।"

पर यहाँ केवल खुद बचने का प्रश्न नहीं है। यदि माता-पिता रोगी हैं, साधनहीन हैं, बच्चों को पौष्टिक खाद्य नहीं दे सकते, शिक्षा नहीं दे सकते फिर भी बच्चे पैदा करते हैं, तो उनको शारीरिक, मानसिक जो कुछ कष्ट होगा, यदि गांधीजी उनको उनसे बचाना नहीं चाहते, तो न बचावें, पर बच्चों का क्या दोष है ? मैं समझती हूँ कि बच्चे हों या न हों, यह एक सुविधा-असुविधा का विशेषकर वैयक्तिक एवं सामाजिक सुविधा-असुविधा का प्रश्न है, इसमें काल्पनिक नैतिक मूल्यों को मिलाना विचार विभ्रम ही पैदा कर सकता है।

यह मानना बिलकुल मुश्किल मालूम देता है कि व्यक्ति और समाज के परे कोई नैतिक मूल्य है। भिखमंगों, रोगियों तथा अशिक्षितों को पैदा करते जाना कभी नैतिक नहीं [illegible]। गांधीजी का यह तर्क कि मनुष्य के लिये अपने [illegible] से बचना गलत [illegible] गांधीजी का

[illegible] [illegible]। जन्मनिरोध के साधनों को वैराग्य से [illegible]
से [illegible] [illegible] हा नहीं कहा जा सकता।

संयम तथा ब्रह्मचर्य से कोई मना नहीं करता। इनके [illegible]
जीवन कुछ रह ही नहीं जाता। पर पति-पत्नी जब संयम न कर
और साथ ही वे सन्तान उत्पन्न नहीं करना चाहते, तो उनके
जन्मनिरोध के साधन हैं। यह समझना कि संभोग के [illegible]
सन्तान उत्पादन है पशुओं में ठीक हो सकता है, पर मनुष्यों में
ऐसा नहीं रहा। मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में आदिम प्रकृति से हटता
है यदि इस क्षेत्र में भी हट गया है तो इसमें आश्चर्य क्या है!
इसमें दुःख करने की ही क्या बात है? इस धारणा में [illegible]
कि हम प्रकृति से सुखवाले हिस्से को तो ग्रहण कर लेती हैं, पर
हिस्सों को त्याग देती हैं? क्या सारे विज्ञान का यही [illegible]
कर्त्तव्य नहीं है?

रहे नैतिक विचार, सो ये तो मनुष्य और मनुष्य से सम्बन्ध
यह कौन कह रहा है कि विवाह-बन्धन के बाहर इन साधनों
प्रयोग किया जाय? सम्भव है कि कोई ऐसा करता हो, प
तो समाज में चोर उचक्के भी हैं, जो आँख चुकते ही पराया
गायब कर दें। जैसे चोर या डाकू को समाजवाद का प्रतिपादक
कहा जा सकता, उसी तरह जो लोग व्यभिचार तथा क्षणिक
प्रेम के प्रतिपादक हैं उन्हें जन्मनिरोध का प्रतिपादक नहीं मा
सकता। ऐसे लोग जन्मनिरोध के वैज्ञानिक साधनों के आवि
के पहले भी मौजूद थे। इसी प्राथमिक बात को स्वीकार न क

े कारण गांधीजी ने बराबर इन साधनों को गलत रूप
ता।

धीजी को बराबर इसका भय रहा कि प्रकृति पर या ईश्वर के
में हस्तक्षेप न किया जाय, पर जैसा कि मैं बता चुकी सारा
ही प्रकृति के नियमों को जानने के बाद प्रकृति में हस्तक्षेप है।
हात्माजी की बराबर यह धारणा रही कि जन्मनिरोध के साधनों
पादक व्यभिचार के प्रतिपादक हैं। पर यह बात नहीं जैसा
र-बार बताया जा चुका है।

क बात और। कई प्रतिपादकों ने गांधीजी को यह लिखा कि
के लिये ये साधन विशेष कल्याणकारी हैं। एक-एक बार
रण में स्त्री को जिस प्रकार कष्ट उठाना पड़ता है, जिस प्रकार
से वंचित रहना पड़ता है, गांधीजी का ध्यान इस ओर
या गया।

इस पर उन्होंने कहा—"स्त्रियों का नाम लेकर जो कुछ कहा गया
ह बहुत ही दुःखद है। मेरी राय में यह स्त्रियों का अपमान है
नका हवाला देकर कृत्रिम उपायों से जन्मनिरोध का प्रतिपादन
जाय। योंही पुरुष ने अपनी कामुकता के कारण उसे काफी
दिखाया है और ये कृत्रिम साधन चाहे इनके प्रतिपादकों के
ये कितने भी अच्छे हों उसे और नीचे गिरा देंगे। मुझे ज्ञात है
कुछ आधुनिकायें इन साधनों का प्रतिपादन करती हैं। पर मुझे
ास है कि स्त्रियों की अत्यन्त अधिक संख्या इन साधनों को अपनी
दा को क्षुण्ण करनेवाली बता देंगी। यदि पुरुष को सचमुच स्त्री
हानुभूति है, तो वह अपने ऊपर संयम रक्खें।"

जन्मनिरोध का एक सामाजिक उद्देश्य भी है [illegible]। गांधीजी इस तर्क के आधार को ही स्वीकार करने के लिये [illegible] उन्होंने २ अप्रैल १९२५ के यंग इंडिया में लिखा था—

"यदि यह कहा जाय कि जाति के कल्याण के लिये [illegible] निरोध के साधनों की आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ [illegible] अधिकता है, तो मैं इसे मानने के लिये तैयार नहीं। यह [illegible] प्रमाणित नहीं हुई। मेरी राय में यदि ढंग की भूमि [illegible] उन्नततर कृषि तथा पूरक उद्योग-धंधा हो, तो इस देश [illegible] दुगुने लोग रह सकते हैं।"

महात्माजी का यह सोचना तो ठीक था कि यदि [illegible] बदल जाय, तो इस देश में दुगुने लोग [illegible] से रह सकेंगे। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक के लिये क्या हो, क्या [illegible] पैदा किये जायँ जो न तो पेट भर खाना प्राप्त कर सकें और न [illegible] शिक्षा मिल सके? महात्माजी ने इस प्रश्न का कोई भी [illegible] नहीं दिया।

तीन सालों से ऐसा कर रहा हूँ, पर मेरी स्त्री इसके बहुत विरुद्ध
. वह चाहती है कि जिसे लोग जीवन का आनन्द कहते हैं, वह
भी मिले। आप अपनी उत्तुङ्ग उच्चता से इसे पाप कह सकते हैं।
मेरी पत्नी इसे इस रूप में नहीं देखती। वह और भी बच्चों की
ता होने के लिये तैयार है। उसे जिम्मेदारी के वे सब ख्यालात
हीं हैं, जिन पर मुझे नाज़ है। मेरे माता-पिता मेरी स्त्री की तरफ-
ारी करते हैं, और इसपर रोज़ झगड़े हुआ करते हैं। मैं अपनी स्त्री
ो तृप्त करने से इनकार करता हूँ, इससे वह इतनी चिड़चिड़ी और
ोधी हो गई है कि ज़रा-सी बात पर लड़ने को तैयार हो जाती है।
ारी समस्या यह है कि इस मामले को कैसे निपटाऊँ। मेरे लिये तो
जितने बच्चे हैं, उतने ही यथेष्ट हैं, उन्हीं को पालना-पोसना मेरे लिये
कठिन है। स्त्री तो बहुत ही नाराज़ है। यदि उसे वह तृप्ति न मिले
जैसे वह माँगती है, तो वह ख़ुमयह हो सकती है, पागल हो सकती है
या आत्महत्या भी कर सकती है। मैं आप से सत्य कहता हूँ कि
यदि कानून से निषिद्ध न होता, तो मैं उसी प्रकार से चाहे हुए बच्चों
को गोलियों से उड़ा देता जिस प्रकार आप आवारा कुत्तों को मार देते।
गत तीन महीनों से न तो मैंने शाम का नाश्ता किया है और न रात
का खाना खाया है। मेरा काम ऐसा है कि लगातार कई दिनों तक
उपवास नहीं कर सकता। मुझे स्त्री पर कोई दया नहीं आती क्योंकि
वह मुझे बेकार ... आदमी समझती है। मैं जन्मनिरोध का साहित्य
... चुका हूँ। ... आकर्षक है। मैंने आत्म-संयम पर आपकी
पढ़ ... उधेड़बुन में हूँ।"

इस पत्र में जो समस्या सामने आती है, उसका समाधान सन्तान निरोध के उपायों से आसानी से हो जाता है। पत्र-लेखक के शब्दों से साफ जाहिर है कि वह संभोग के विरुद्ध नहीं है, पर वह यह नहीं चाहता कि और सन्तान उत्पन्न करे। साथ ही साथ उसने गांधीजी का साहित्य पढ़ा है और वह यह नहीं चाहता कि इस उद्देश्य से कथित कृत्रिम उपायों का प्रयोग करे।

देखना चाहिये कि इस पर गांधीजी का क्या कहना है। वे लिखते हैं—"मेरे मतानुसार संभोग तभी जायज और वैध है जब कि दोनों तरफ से इसकी इच्छा हो। मैं यह नहीं मानता कि यदि एक पक्ष इच्छुक है, तो वह अपनी इच्छा को दूसरे पक्ष पर लादे। यदि इस विषय में मेरा मत सही है, तो पति के लिये कोई नैतिक मजबूरी न ं है कि वह स्त्री की जिद को माने। पर इसके साथ ही इस अस्वीकृति के कारण पति के सिर पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी भी आ जाती है। वह अपनी स्त्री के प्रति ऐसा व्यवहार न रक्खे कि मानो वह बहुत ऊँचाई पर है और स्त्री बिलकुल गड्ढे में है। उसे नम्रतापूर्वक यह मानना चाहिये कि उसके लिये जिस बात की कोई आवश्यकता नहीं है, स्त्री के लिये वह बहुत भारी आवश्यकता है। इसलिये उसे चाहिये कि अपनी स्त्री के साथ बहुत ही प्रेम तथा नम्रता का बर्ताव रक्खे। वह अपनी पवित्रता में इतना विश्वास रक्खे कि अपनी साथिन की कामवृत्ति को उच्चतम श्रेणी की कर्म शक्ति में परिणत कर दे।"

अब यह बिल्कुल साफ है कि गांधीजी ने असली जो

न पैदा करना, उस पर से ध्यान हटाकर बिल्कुल दूसरी बातें कही पर पत्रलेखक ने अपनी स्थिति इतनी स्पष्ट कर दी थी कि असली स्या से सम्पूर्ण रूप से भागना असम्भव था। इस कारण वे अन्त उस बात पर आते हैं। जिस पर उन्हें सबसे पहले आना हिये था।

वे कहते हैं—"इस क्षेत्र मे मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि तान उत्पन्न करने की इच्छा न करना ही स्त्री को तृप्त न करने के लिये यथेष्ट कारण नहीं माना जा सकता। यह करीब-करीब ायरपन मालूम होता है कि शिशु-पालन करने के डर से स्त्री का त्याख्यान किया जाय। परिवार की हद से ज्यादा वृद्धि पर रोक-थाम करने के लिये स्त्री तथा पुरुष को संयुक्त रूप से तथा वैयक्तिक रूप से ब्रह्मचर्य रखना चाहिये, पर केवल इस कारण अपने साथी को तृप्त न किया जाय यह ठीक नहीं मालूम होता।"

गांधीजी यह भी मानते हैं कि भारतवर्ष में गरीबी है और उसमें अधिक बच्चों का पालन-पोषण करना बहुत कठिन है। वे यह भी मानते हैं कि अधिक बच्चे पैदा न किये जायें। पर इसका एकमात्र उपाय उनके अनुसार यह ही है कि ब्रह्मचर्य रक्खा जाय। वे इस लेख का अन्त यों करते हैं कि जीवन की जो धारणा उनके मन में है, उसमें जन्मनिरोध के कृत्रिम उपायों का कोई स्थान नहीं है।"

समय-समय पर जन्मनिरोध के कई प्रतिपादक उनसे मिले और उन लोगों ने यह समझाने की चेष्टा की कि जन्मनिरोध बहुत जरूरी ...जी बराबर अपने मत पर डटे रहे। ऐसे मिलनेवालों

मे मिसेज सैंगर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह महिला इस सम्बन्ध में विशेषज्ञ थी और इसी कारण सारी दुनिया का दौड़ा कर रही थी कि जन्मनिरोध के विचारों का प्रचार हो। मिसेज सैंगर ने गांधीजी के साथ बहुत व्यौरे में अपनी बातों को रक्खा पर गांधीजी पर इनका कोई असर नहीं हुआ।

जब मिसेज सैंगर ने उनसे यह कहा कि मान लीजिये कोई स्त्री या पुरुष बच्चा नहीं चाहते, पर सम्भोग सुख चाहते हैं, तो उनके लिये आप क्या बतायेंगे क्योंकि यह तो प्रश्न में ही मान लिया गया है कि वे ब्रह्मचारी नहीं रहना चाहते।

इस पर गांधीजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि ऐसी हालत में भी मैं उस स्त्री या पुरुष से जन्मनिरोध के लिये नहीं कहूँगा, मैं तो उनसे यह ही कहूँगा कि मेरी दवा आपके मतलब की नहीं है, आप और कहीं जाइये।

इस पर मिसेज सैंगर ने कुछ ऐसे लोगों के उदाहरण तथा तथ्य गांधीजी के सामने रक्खा जिनसे गांधीजी कुछ प्रभावित हुये, याने उन्होंने माना कि कुछ कठिन मामले होते हैं। पर उन्होंने कहा—"मैं मानता हूँ कि कुछ बहुत कठिन मामले हैं, नहीं तो जन्मनिरोध के प्रतिपादकों के सामने कोई बात ही न होती और उनको कोई भी नहीं। मेरा कहना तो यह है कि आप ज़रूर ऐसे
को सुलझाइये और दवा निकालिये, पर
बताती हैं वे दवायें उनके अलावा

सुधारकों के रूप में इन दवाओं को त्याज्य करार दे दें, तो दूसरी दवायें अवश्य निकल आयेंगी।"

मिसेज सैंगर ने गांधीजी से यह कहा कि दूसरे देशों की स्त्रियों की बात तो दूर रही, वे अपने देश की स्त्रियों को भी ठीक से नहीं जानते। इस पर गांधीजी ने कहा—"मैंने अपनी स्त्री को सब स्त्रियों की धुरी बनाई और उन जरिये से मैंने सारी स्त्री जाति का अध्ययन किया। दक्षिणी अफ्रीका में मैं बहुत-सी गोरी स्त्रियों से मिल चुका और वहाँ पर जितनी भी भारतीय स्त्रियाँ थीं उन सब को मैं जानता था। मैंने उनके साथ काम किया।"

श्री महादेव देसाई ने मिसेज सैंगर और गांधीजी की बातचीत की रिपोर्ट लिखी। उन्होंने लिखा कि मिसेज सैंगर ने गांधीजी के सामने यह पेश किया कि यदि पति-पत्नी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें, तो उनमें लड़ाई-झगड़े, बखेड़े तथा अतृप्त इच्छाओं के दमन से उत्पन्न मनमुटाव रहेगा। "उनमें न तो प्रेम पूर्ण दृष्टि विनिमय होगा, न रात को सोते समय प्रेम पूर्ण चुम्बन का आदान-प्रदान होगा और न प्यार की बातें होंगी। श्री देसाई ने लिखा "मिसेज सैंगर ने ऐसा कहते समय यह भुला दिया कि अमेरिका में जन्मनिरोध के उपायों तथा उसके अनुसंगिक उपायों के कारण लड़ाई-झगड़े, बखेड़े, मनमुटाव, तलाक और क्या-क्या होते रहते हैं। जिस अमेरिका को हम अप्टनसिन-क्लेयर ऐसे [illegible] सुधारक की पुस्तकों से जानते हैं, वह मिसेज सैंगर [illegible] को जानने का दावा करती हैं उससे भिन्न है। [illegible] धीजी से ऐसे बहुत से उदाहरण बताये, जिनमें

आत्मसंयम के कारण विकृत मस्तिष्कता उत्पन्न हो गई। गांधीजी को जो असंख्य पत्र रोज मिलते रहते हैं, उनके आधार पर उन्होंने कहा—जिस आधार पर यह सारी बातें कही जाती हैं, वह केवल विकृत मस्तिष्कों के परीक्षण पर ही अवलम्बित है। जो उपसंहार निकाले गये हैं, वे स्वस्थ व्यक्तियों के परीक्षण के आधार पर नहीं हैं। उदाहरणार्थ जिन लोगों को लेकर यह सारी बातें लिखी गई हैं, उनलोगों ने कभी भी मामूली ब्रह्मचर्य का जीवन भी नहीं रक्खा।"

गांधीजी ने श्री मती सैंगर से यह बतलाया कि यदि वे कलकत्ता जायें तो उन्हें मालूम होगा कि जन्मनिरोध के उपायों के साधनों से अविवाहित पुरुषों तथा स्त्रियों का कैसा सत्यानाश हुआ है। पर श्री मती सैंगर ने साफ-साफ ऐसे मामलों में जिम्मेदारी लेने से इन्कार किया, क्योंकि उनका कहना था कि वे केवल विवाहित लोगों में ही जन्मनिरोध के साधनों का प्रचार कर रही हैं।

श्रीमती सैंगर ने गांधीजी से एक बहुत ही गम्भीर प्रश्न पूछा—"तो क्या आपका कहना यह है कि सारे जीवन में पती-पत्नी केवल तीन या चार बार सम्भोग करें?"

इस पर गांधीजी ने कहा—"लोगों को यह शिक्षा क्यों न दी जाय कि वे तीन-चार बच्चों से अधिक पैदा न करें और जब यह संख्या पूरी हो चुके, तो वे अलग सोयें। यदि उनको यह शिक्षा दी जाय तो थोड़े दिन में यह एक रिवाज के रूप में परिणत हो जायगा। और यदि समाज सुधारकगण जनता को यह बात समझा न सकें, तो ऐसा एक कानून क्यों न बना दिया जाय। यदि पति और पत्नी

चार बच्चे उत्पन्न कर लें तो यह समझ लेना चाहिये कि उन्होंने यथेष्ट शारीरिक सुख उठा लिया अब उनके प्रेम को एक उचतर सतह पर उठाने की जरूरत है। उनके शरीर तो मिल चुके काफी हुआ। जब उनको वाञ्छित बच्चे मिल गये तो उनका प्रेम आध्यात्मिक सबंध के रूप मे परिणत हो जाता है। पर यदि यह बच्चे मर जायँ और वे और बच्चे चाहें तो फिर से उसका मिलन हो सकता है। जब आप उन्हे जन्मनिरोध की शिक्षा देती हैं तो सम्भोग करना एक कर्त्तव्य-सा हो जाता है। आप उनसे मानो यह कहती हैं कि यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे अपने आध्यात्मिक विकास को रोक लेते हैं। जन्मनिरोध की शिक्षा देकर आप उन्हें ऐसा तो नहीं कहती कि यहाँ तक इससे और आगे नहीं। आपलोगों से यह कहती हैं कि वे संयम के साथ शराब पीयें, मानो ऐसे मामले मे संयम सम्भव है। मैं ऐसे सयमी लोगों को बहुत जानता हूँ।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी ने किसी रूप मे भी यह मानना स्वीकार नहीं किया कि जन्मनिरोध उपयोगी या नैतिक है। उन्होंने बराबर इसकी निन्दा ही की यहाँ तक कि जब उनके सामने यह बात रक्खी गई कि स्त्री के कुछ दिन ऐसे होते हैं, जिनमें उसके साथ सम्भोग करना खतरे से खाली नहीं है, बाकी दिनों में उसके साथ सम्भोग किया जा सकता है, इसको भी गांधीजी ने मानने से इन्कार किया। केवल यह कहा कि इसमें संयम का जो थोड़ा-सा उपादान है, उसीके कारण यह तरीका जन्मनिरोध के तरीके से शायद कुछ अच्छा है।

वेश्याओं की समस्या

स्त्रियों की समस्याओं के सम्बन्ध में गांधीजी का ध्यान वेश्याओं
तरफ भी आकृष्ट हुआ। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार
अवसरों पर प्रकट किये। उनकी विचारधारा के अनुसार ये
श्यायें पतित बहनें-मात्र थीं। इन शब्दों से ही प्रकट है कि उनके
हृदय में इनके प्रति कोई घृणा नहीं थी, बल्कि सहानुभूति थी। जैसे,
बहन कितनी भी पतित हो जायँ पर भाई उसके साथ भाई का ही
बर्ताव करता है, उसी प्रकार गांधीजी के हृदय में इनके प्रति ममता
ही थी।

यों तो गांधीजी ने वेश्याओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना और
पढ़ा था। विलायत में छात्र-रूप में रहते समय भी उन्होंने कुछ ऐसी
स्त्रियों का निकट परिचय प्राप्त किया था जो ... । नहीं तो कुलटा
अवश्य थीं। पर ... रों में आये वह
आरम्भ में ... र यहाँ पर केवल
... भूल न सके।
... ों ने उनसे
भेजी थीं कि वे
... में भी धन्धा
... उसमें इन सब
को लेकर गांधीजी

के पास आये, वे यह नहीं समझ पाये थे कि गांधीजी इस सम्बन्ध में क्या रुख लेंगे, पर गांधीजी ने उस व्यक्ति को आश्वासन दिया कि वे तो सब के सेवक हैं, इसलिए उनका यह कर्त्तव्य था कि उनकी भी सेवा करें।

गांधीजी बरिसाल की इन पतित बहनों के साथ दो घण्टे तक मिले। इनलोगों ने उनसे यह बताया कि बरिसाल की बीस हजार आबादी में उनकी संख्या ३५० है। गांधीजी ने इस मुलाकात को बहुत अधिक महत्व दिया और उन्होंने इसपर १५-९-२१ के यंग इन्डिया में लिखा कि ये लोग बरिसाल के पुरुषों की लज्जा के प्रतीक हैं, और जितना जल्दी बरिसाल इनसे मुक्त हो जाय उतना ही अच्छा है। "और जो बरिसाल के सम्बन्ध में सत्य है वही दूसरे शहरों के सम्बन्ध में सत्य है। मैं केवल बरिसाल का उल्लेख एक उदाहरण की तौर पर कर रहा हूँ। इन बहिनों की सेवा करने के सम्बन्ध में सोचने का श्रेय बरिसाल के कुछ नौजवानों को है। मैं आशा करता हूँ कि बरिसाल जल्दी ही यह दावा कर सकेगा कि वहाँ यह बुराई जड़-मूल से खत्म कर दी गई।"

गांधीजी ने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को जारी रखते हुये लिखा—"जिन बुराइयों के लिये पुरुष जिम्मेदार है, इनमें कोई भी इतनी पतनकारी, भयंकर तथा पाशविक नहीं है, जितनी की यह बुराई है जिसमें मनुष्य जाति के उत्तमतर आधे को याने स्त्रियों का दुरुपयोग किया जाता है। मेरी राय मे स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले में दुर्बलतर नहीं है, बल्कि पुरुष और स्त्री में स्त्री ही उदारतर है क्योंकि यह अब

भी त्याग, नीरव कष्ट-सहन, नम्रता, विश्वास तथा ज्ञान का मूर्त्तरूप है। कई बार यह देखा जाता है कि स्त्री की सहज बुद्धि पुरुष के अधिकतर ज्ञान-सम्बन्धी उद्धत दावों से अधिक सही साबित होती है। सीता का नाम जो राम के पहले लिया जाता है और राधा का नाम कृष्ण के पहले लिया जाता है, यह कोई निरर्थक बात नहीं है।

"हम अपने को यह धोखा न दें इस पाप की दूकानदारी का हमारे विकास में इसलिये कोई स्थान है कि यह बराबर रही है और सभ्य योरोप में तो कई स्थान में राष्ट्र के द्वारा व्यवस्थित है। भारत में यह बुराई बराबर रही है, इस आधार पर हम इसको चिरस्थाई न बनावें, हमारे विकास की गति उसी समय रुक जायगी, जिस समय हम पाप और पुण्य में फरक न करें और उस भूतकाल के अन्धों की तरह अनुकरण करें जिसके सम्बन्ध में हमारा ज्ञान असम्पूर्ण है। भूतकाल में जो कुछ भी अच्छी-से-अच्छी तथा उदार-से-उदार बातें थीं हमें उनके उत्तराधिकारी होने का गर्व है, न कि और बातों का। हम अपनी पिछली गलतियों को जारी रखकर अपने उत्तराधिकार का अपमान न करें, आत्म सम्मानपूर्ण भारत में क्या प्रत्येक स्त्री का सतीत्व हमारी बहिनों के लिये जितनी जिम्मेदारी की बात है, उतनी ही हमारे लिये नहीं है ? स्वराज्य का अर्थ तो यही है कि यहाँ के प्रत्येक अधिवासी को हम भाई या बहिन समझें।"

इस समस्या के प्रति गांधीजी के रुख की विशेषता यह थी कि वह ... उसमें भावुकता की मात्रा बहुत अधिक थी। ... दोष पुरुष की पशुता या कामुकता पर

लाद देना केवल समस्या के एक पहलू तक अपने को सीमित रखना है। गांधीजी ने इस समस्या पर विचार किया, पर वे अपने विचारों के कारण उसकी आर्थिक-सामाजिक गहराई तक नहीं गये। पुरुष की कामुकता दोषी अवश्य है, पर जिस सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में इसे खुलकर खेलने की स्वतंत्रता मिलती है, उस पर भी ध्यान देना चाहिये था।

इस समस्या के प्रति गांधीजी का सारा दृष्टिकोण ही भावुकतामय था, इस कारण वे बहुत-सी मोटी-मोटी बातों को भी देख नहीं पाये। सच तो यह है कि उनकी विचारधारा तथा दर्शन में ही यह दोष अन्तर्निहित था। वे यह समझते थे कि लोगों के प्रति नैतिक अपीलें करने से ही सारे काम बन जायेंगे और जगत सुधर जायेगा। इसलिये वेश्यावृत्ति की समस्या को सुलझाने के लिये उनके निकट दो ही उपाय थे—

(१) वेश्यओं के प्रति यह नैतिक आवेदन करते रहना कि वे इस वृत्ति को छोड़ दें।

(२) वेश्यागामियों से तथा समाज से यह प्रार्थना करना कि वह ऐसा होने न दें।

पर ऐसी बातें तो हमेशा होती रही हैं और इनसे कुछ आता-जाता नहीं। उन्होंने अपनी सहानुभूति अवश्य दिखलाई, पर उससे कितना काम बना इसमें सन्देह है। उन्होंने अपने लेख में इन्हीं बरिसाल की वेश्याओं के सम्बन्ध में लिखा—"और इसलिये एक ... मैंने इन सौ बहनों के सामने लज्जा से सिर नीचा कर

लिया। इनमें से कुछ तो ज्यादा उम्र की थीं पर अधिकांश बीस से तीस के अन्दर की थीं। इनमे से दो या तीन लड़कियाँ बारह साल से कम उम्र की थीं। इनलोगो ने बताया कि सब मिलाकर इन सब की छ लड़कियाँ तथा चार लड़के हैं। इन लड़कों में से जो सब से बड़ा था उसकी शादी उन्हीं की श्रेणी की एक लड़की से कर दी गई है। इन लड़कियों को उसी प्रकार के जीवन के लिये पाला जायेगा जैसी कि वह बिता रही हैं। हाँ, कोई अनहोनी बात हो जाय तो और बात है। मेरे दिल मे यह बात एक बर्छी की तरह चुभ गई कि ये समझती हैं कि उनके भाग्य में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। और फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि ये स्त्रियाँ नम्र तथा बुद्धिमती थीं। उनलोगों की बातचीत बड़े ढंग की थी और उन्होंने जो उत्तर दिये वे बहुत ही मर्यादा-पूर्ण थे और वे जिस बात को भी कहती थीं उनको सुनकर ऐसा मालूम होता था कि वे कुछ छिपा नहीं रही हैं और सीधेपन से बोल रही हैं। और ऐसा मालूम होता था कि इस समय उनलोगों का निश्चय सत्याग्रही की तरह दृढ़ है। इनमें से ग्यारह ने यह प्रतिज्ञा की कि वे अपना वर्त्तमान जीवन त्याग देंगी और अगले दिन से सूत कातेंगी तथा बुनकारी करेंगी बशर्ते कि उन्हें इसमे सहायता मिले। दूसरी बहनों ने कहा कि वे कुछ सोचकर तभी उत्तर देंगी क्योंकि वे हमें धोखा देना नहीं चाहतीं।"

इसके बाद गांधीजी ने बरिसाल के लोगों के लिये कुछ उपदेश लिखे, जिनमें एक खास बात यह है कि उन्होंने कहा कि गाँव के लोग कम-से-कम इस पाप से बरी हैं यह बात अच्छी है, पर वस्तुस्थिति

यह है कि वे लोग उतने खरी नहीं हैं जितना कि गांधीजी ने सरलता के कारण समझा। गाँव हो या शहर हो समाज की पद्धति तो शोषणात्मक है, फिर उसमें स्त्रियों के शोषण की कमी कैसे हो सकती थी। अवश्य गाँव के लोग अक्सर अपनी स्त्रियों के साथ रहते हैं, इस एक परिस्थिति के कारण गाँव में वेश्यावृत्ति में कमी होती है इसमें सन्देह नहीं। पर और परिस्थियाँ तो वही हैं। समाज में कुछ लोग साधनों के मालिक हैं और कुछ लोग सम्पूर्ण रूप से साधनहीन; फिर समाज में धर्म आदि के जरिये से पुरुष की प्रधानता है स्त्रियों को जीविका उपार्जन की कोई शिक्षा नहीं है और उनके शोषण के लिये लोग तैयार हैं। ऐसी परिस्थिति में गाँववालों में वेश्यावृत्ति का रूप कुछ और भले ही रहे, उसका अन्त नहीं हो सकता था।

वेश्यावृत्ति को दूर करने के लिये गांधीजी के निकट दो ही उपाय थे। उन्होंने लिखा—"इन अभागी बहिनों का उद्धार करने के लिये दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है। एक तो यह कि हम पुरुष अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण करना सीख जायँ और दूसरा यह इन स्त्रियों को जीविकार्जन का ऐसा उपाय बताया जाय जिससे कि वे सम्मान के साथ अपनी रोटी कमा सकें।"

जिन दिनों गांधीजी ने यह लेख लिखा उन दिनों देश में असहयोग का जोर था। इस कारण गांधीजी ने लिखा—"असहयोग का आन्दोलन कुछ भी नहीं है यदि यह हमें पवित्र न कर ले और हमारी दुष्ट प्रवृतियों को नियन्त्रित न करे। और हमारे निकट

कताई तथा बुनाई के अतिरिक्त कोई ऐसा काम नहीं है जिसे सभी सीख सकते हैं और उसमें उन्हें यह खतरा न होगा कि बेकारी हो जाय। ये बहनें कम-से-कम इनमें से अधिकांश शादी की बात न सोचें। उनलोगों ने माना कि वे शादी नहीं करेंगी। इसलिये उनलोगों को भारत की सच्ची सन्यासिनी होना पड़ेगा। उनके सामने किसी तरह की फिक्र नहीं, यदि है तो केवल सेवा की, इस कारण वे खूब मन लगाकर कताई तथा बुनाई कर सकती हैं। यदि दस लाख पचास हजार स्त्रियाँ प्रतिदिन आठ घण्टे के हिसाब से बुनाई करें, तो उसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिदिन गरीब भारत को उतने ही रुपयों की आमदनी होगी। इन बहनों ने बतलाया कि औसत में उनकी आमदनी प्रतिदिन दो रुपये से अधिक नहीं है। पर उन्होंने यह माना कि इसमें से बहुत-सा हिस्सा तो पुरुष को रिझाने के लिये खर्च हो जाता है, पर यदि वे कताई-बुनाई करें तो उन्हें इन वस्तुओं की आवश्यकता न पड़ेगी।"

जहाँ तक इस बात को समझने का ताल्लुक है कि वेश्याओं को कोई आजीविका दिलाने की आवश्यकता थी, गांधीजी इसे भली भाँति समझते थे। पर उनके अपने विचारों के अनुसार इसके लिये कताई और बुनाई ही थी। इस बात को बताने की आवश्यकता नहीं है कि कताई और बुनाई को वे जितना भी महत्त्व देते हों, ढंग की जीविका के लिये इन दोनों साधनों की उपयोगिता कहाँ तक ठीक थी इसमें सन्देह है।

फिर सारे दृष्टिकोण में सबसे बड़ी गलती यह है कि जड़ से रोग

को दूर करने के बजाय उन्होंने उसको एक बहुत आसान समस्या के रूप में समझा मानो वेश्यायें चाहें तो सब कुछ हो सकता है। वे इस बात की तह तक नहीं गये कि वेश्यायें क्यों पैदा होती हैं। वेश्याओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण सामाजिक और आर्थिक है इस बात को वे कभी समझ नहीं पाये। इसी कारण उनका बताया हुआ समाधान उनकी सदिच्छा का साक्षी होने पर भी हवा में लटक कर रह गया।

गांधीजी इस बात को समझते थे कि कम-से-कम कताई से इन स्त्रियों का गुजारा नहीं हो सकता पर उन्होंने अपने चर्खा प्रेम के कारण इस पहलू को सामने नहीं रक्खा। फिर भी सत्य कहाँ तक छिपाया जाता? २८–५–२५ के यंग-इन्डिया में उन्होने एक लेख लिखा उसमें उन्होने साफ-साफ इस बात को स्वीकार किया "साथ ही इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जीविका के रूप में उन्हें चर्खा कातना बताया नहीं जा सकता। वे यदि अधिक नहीं तो एक या दो रुपये रोज कमा लेती हैं। इसलिये या तो उन्हें बुनकारी करनी चाहिये या कसीदा-कढ़ाई या ऐसा कोई काम करना चाहिये जिसमें पैसे ज्यादा मिलें।" पर स्मरण रहे कि गांधीजी ने इस बात को १९२५ मे लिखा, अर्थात चर्खे के सम्बन्ध मे कुछ तजुर्बा प्राप्त कर लिखा।

वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में दो समस्यायें मुख्य हैं।

(१) जो स्त्रियाँ वेश्यायें बन चुकी हैं, उनको कैसे उससे मुक्त किया जाय और मुक्त करने के बाद उन्हें कैसे समाज के साधारण सदस्य में परिणत किया जाय।

(२) कैसे इस बात की व्यवस्था की जाय कि नई वेश्यायें उत्पन्न । हों याने नई स्त्रियाँ इस ओर न झुकें ।

गांधीजी ने इस विस्तृत रूप में इस समस्या पर कभी आलोचना हीं की। उनका ध्यान मुख्यतः समस्या की सतह तक सीमित था। ई बार गांधीजी के सामने यह समस्या आई, पर वे पहले बताये हुये विचारों के इर्द-गिर्द ही घूमते रहे। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ श्याओं ने काँग्रेस की सदस्या बनकर काम करना चाहा। पहले तो गांधीजी ने इसका कोई विशेष विरोध नहीं किया, पर तजुर्बे से मालूम हुआ कि ये स्त्रियाँ यदि पेशा न छोड़कर देश सेवा के कार्य में आतीं हैं तो इससे मंगल न होकर अमंगल ही होता है। गांधीजी ने मजबूर होकर इस बात को लिख भी दिया और कह भी दिया कि दूसरे का कल्याण करने के पहले उन्हें चाहिये कि पहले अपना कल्याण कर लें। निःसन्देह उनके ये विचार बहुत ही व्यावहारिक थे।

यद्यपि गांधीजी जैसा कि बता दिया गया समस्या की तह तक नहीं गये। और उनका दृष्टिकोण बहुत कुछ स्वप्निल आदर्शवादी था, पर इसमें सन्देह नहीं कि उनके हृदय में समाज की इन हतभाग्य सदस्याओं के लिये समवेदना तथा सहानुभूति थी। दुःख है कि अब हम यद्यपि स्वतंत्र हो गये हैं, और हमारे देश के सार्वजनिक जीवन के केन्द्रस्थल में कई प्रमुख महिलायें हैं, फिर भी हमारे देश की इस महान समस्या तथा कलंक की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। वेश्याओं का अस्तित्व केवल स्त्रियों के लिये नहीं पुरुषों के लिये भी [illegible]ा नहीं तो उतने ही कलंक की बात है।

यह समझना भारी भूल है कि वेश्यायें एक आवश्यक बुराई हैं। रूस में वेश्यावृत्ति का बिल्कुल अन्त कर दिया गया है। जो बात एक देश में की गई है, वह दूसरे देश मे भी सम्भव है। रूसवालों ने कोई जादू तो नहीं किया, उन्होंने जो कुछ भी किया, वह यही था कि वे हर चीज की जड़ पर गये, यदि एक प्रयोग असफल रहा तो दूसरा प्रयोग किया और जब उन्होंने प्रश्न को हल कर लिया तभी दम लिया। हमारे नेता शराबबन्दी की तरफ तो कुछ कुछ ध्यान देते हैं, पर उनका ध्यान इस समस्या की ओर कतई नहीं है, यद्यपि एक इस समस्या के सुलझने पर कितनी ही समस्यायें खुद सुलझ जाती हैं। क्या यह आशा की जाय कि इस विकट समस्या की तरफ हमारे नेताओं का ध्यान जायेगा ?

समाप्त